राष्ट्र-वाणी

[लन्दन में दूसरी गोलमेज़ परिषद् के अवसर पर दिये गये गाँधीजी के भाषण]

सम्पादक

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अध्यापक जे० सी कुमारप्पा

सस्ता-साहित्य-मण्डल

सत्तावनवाँ ग्रन्थ

राष्ट्र-वाणी

[लन्दन में दूसरी गोलमेज़ परिषद् के अवसर पर दिये गये गांधीजी के भाषण]

सम्पादक

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

जे० सी कुमारप्पा

अनुवादक

शङ्करलाल वर्मा

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य मण्डल,

अजमेर ।

प्रथमवार, १५००
सन् उन्नीससौ बत्तीस
मूल्य दस आना

मुद्रक
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य-प्रेस,
अजमेर।

निवेदन

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य तथा अध्यापक जे० सी० कुमारप्पा द्वारा संपादित तथा नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित Nation's Voice के गोलमेज़ परिषद् के अवसर पर दिये गये गाँधीजी के भाषणो वाले भाग का अनुवाद पाठको के सामने रखते हुए हमें प्रसन्नता होती है। सरकार और महासभा के समझौते के फलस्वरूप म० गाँधी लन्दन पहुँचे और वही इन भाषणो में उन्होंने भारत की माँग प्रस्तुत की है, जो वस्तुतः समस्त राष्ट्र की वाणी है। इसीलिए इस पुस्तक का नाम 'राष्ट्र-वाणी' रक्खा गया है।

परन्तु इंग्लैण्ड में गाँधीजी का काम सिर्फ गोलमेज़-परिषद् तक ही परिमित न था, बल्कि सच पूछो तो उससे बाहर भारत का सन्देश फैलाने मे वह अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं। महात्माजी के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई, जो इस यात्रा मे उनके साथ ही थे, साप्ताहिक चिट्ठियों के रूप में 'यग इंडिया' के पाठको को उसका सरस वर्णन देते रहे हैं। उक्त अंग्रेज़ी पुस्तक मे उसका भी समावेश है, परन्तु हिन्दी पाठको की सुविधा के लिए हमने उसे अलग ही पुस्तक-रूप में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। 'इंग्लैंण्ड में महात्माजी' के नाम से वह सुन्दर वर्णन भी अलग निकल रहा है। आशा है, पाठको को यह और वह दोनों ही बहुत पसन्द होंगे और वे इन्हें हाथों-हाथ अपना लेंगे।

मंत्री—

सूची

प्रस्तावना

प्रायः पूरे एक वर्ष तक सरकार के साथ अविश्रान्त युद्ध चलने के बाद, गाँधी इर्विन समझौते के अनुसार ५ मार्च सन् १९३१ को विराम-सन्धि हुई और इसी मास के अन्त में करांची में होनेवाले महासभा के अधिवेशन ने अपने एक प्रस्ताव द्वारा इस पर स्वीकृति की मुहर लगाते हुए महात्मा गाँधी को गोलमेज़-परिषद् के लिए अपना प्रतिनिधि चुना। इस प्रस्ताव में यह भी गुंजायश रक्खी गई थी, कि कार्य समिति (Working Committee) चाहे, तो ऐसे और भी प्रतिनिधि चुन सकती है, जो वहां पर महात्माजी के नेतृत्व में काम करें। किन्तु कार्य समिति ने अपनी ता० १ और २ अप्रेल की बैठक में सर्वसम्मति से यही निश्चय किया कि महात्मा गाँधी ही महासभा की ओर से एक मात्र प्रतिनिधि हों। महात्माजी अपनी समझौता-पसन्द मनोवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। यद्यपि ऐसा कोई उदाहरण सामने नहीं है, जिसमें उन्होंने कभी सिद्धान्तों का बलिदान कर कोई समझौता किया हो। फिर भी, क्योंकि वे अधिकारियों तक के स्वभाव पर विश्वास रखने के आदी हैं, इसलिए कुछ मित्रों को भय था कि कहीं कूटनीति-विशारद ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की चाल काम न कर जाय। इसीलिए श्री रेनाल्ड्स तथा अन्य कई मित्रों ने स्वयं उनसे यह इच्छा प्रकट की थी कि और कुछ नहीं तो कम-से-कम पं० जवाहरलाल नेहरू को तो उन्हें अपने साथ ले ही जाना चाहिए। किन्तु कूटनीति का जादू वहीं

असरकारक हो सकता है, जहाँ प्रतिपक्षी भी कूटनीति से काम लेनेवाला हो। इन दोनों में जो जितना अधिक कूटनीतिज्ञ होगा, वही बाज़ी मार ले जायगा। किन्तु जहाँ कूटनीति का सत्य से मुक़ाबला हो, दाव-पेंच-युक्त बातों की सत्य-सरल बातों से बाज़ी लगी हो, वहाँ कूटनीति के पैर जम नहीं सकते,—दाव-पेच कारगर हो नहीं सकते। इसलिए कार्य-समिति ने अकेले सत्यसन्ध महात्मा गाँधी को ही अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाने का जो निणय किया था, वह सर्वथा उपयुक्त ही था। अस्तु।

इधर तो कार्यसमिति ने यह निश्चय किया। किन्तु, जैसा कि आगे चल कर पग पग पर अनुभव हुआ, दूसरी ओर सरकारी अधिकारी गाँधी-इर्विन समझौते से ज़रा भी सन्तुष्ट नहीं मालूम होते थे। इसमें उन्हें सरकार की शान और प्रतिष्ठा नीची हुई दिखाई देती थी। इसलिए उसके पालन में उनकी ओर से न केवल उपेक्षा ही हुई, वरन् ऐसे-ऐसे विघ्न उपस्थित हुए कि स्थिति को सम्हाले रखने के लिए महात्माजी के जी-तोड़ प्रयत्न करने पर भी, वह इतनी गम्भीर हो गई कि अन्त में महात्माजी को, गोलमेज़ परिषद् में भाग लेने से इनकार कर देना पड़ा। १५ अगस्त के जहाज़ से महात्माजी की रवानगी की ख़बर थी। श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा माननीय मालवीयजी तो जहाज़ में अपना स्थान भी रिज़र्व करा चुके थे। आश्रम से मीरां बहन भी, महात्माजी के साथ जाने के लिए, सब सामान से सज्जित होकर रवाना हो चुकी थीं। किन्तु महात्माजी और उनके अन्य साथियों को ११ ता० तक, जब कि रवानगी के केवल तीन दिन शेष रह गये थे, इस बात में पूरा सन्देह था कि वे रवाना हो सकेंगे। अन्त में, वह सन्देह पूरा हुआ; सरकार की ओर से उस दिन

जो उत्तर मिला वह सर्वथा असन्तोष-जनक समझा गया; कार्य समिति ने गोलमेज़ परिषद् में अपना प्रतिनिधि भेजने से इनकार कर दिया; श्रीमती सरोजिनी नायडू और मा०मालवीयजी ने भी अपने टिकिट वापिस कर दिये और जहाज़ महात्माजी को लिए बिना ही रवाना हो गया।

विघ्न सन्तोषी जीवों को इससे बड़ा सन्तोष हुआ। गोरे-अधगोरे अख़बारों ने सारा दोष महासभा के सिर पर डालते हुए सरकार की दृढ़ता की सराहना की। उन्हें इस बात की बड़ी प्रसन्नता हुई कि विराम-सन्धि से महासभा को जो महत्व प्राप्त हो गया था, वह दूर हो गया, और संसार के सामने सरकार की यह दृढ़ता सिद्ध हो गई कि वह महासभा के सहयोग की परवा न करके भी गोलमेज़ परिषद् कर सकती है। किन्तु महात्माजी आसानी से पीछा छोड़ने वाले न थे। उन्होंने सरकार और अपने बीच होनेवाला सारा पत्रव्यवहार और प्रान्तीय सरकारों द्वारा जिस-जिस प्रकार सन्धि का भंग हुआ, उसकी एक लम्बी अभियोग सूची 'यंग इंडिया' में प्रकाशित करदी और लिखा—"यह बात लिखित प्रमाणों द्वारा सिद्ध की जा सकती है कि ऐसे अवसर कम नहीं आये थे, और अब भी जिनकी कमी नहीं है, जिससे कि महासभा प्रान्तीय सरकारों द्वारा की गई शर्तों के भंग के कारण सन्धि को भंग हुई घोषित कर सकती थी। मैं यह बात साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि सन्धि को रद्द न करने में महासभा ने अन्यतम धैर्य प्रदर्शित किया है। × × × × प्रांतीय सरकारों के बरताव से मैं जो कुछ नतीजा निकाल सका हूँ; वह यही है कि सिविल सर्विस के अधिकारी, जिनके हाथ में प्रान्तीय शासन की बागडोर है, वास्तव में नहीं चाहते थे कि मैं लन्दन जाऊँ।"

इन सब के प्रकाशित होते ही चारों ओर तहलका मच गया, और महात्माजी के तार के उत्तर में उन्हें एक बार फिर वायसराय साहब की मुलाक़ात के लिए शिमला बुलाया गया। यह मुलाक़ात सफ़ल हुई। सरकार झुकी, और उसने बारडोली में सन्धि-भंग की जाँच-सम्बन्धी महात्माजी की शर्तें तथा अन्य स्थानों में ऐसी जाँच के अभाव में, अन्य कोई उपाय शेष न रहने पर जनता के सत्याग्रह के अधिकार को स्वीकार कर उनका मार्ग सुलभ कर दिया। २७ अगस्त की शाम को ७ बजे इस दूसरी सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। २९ की सुबह ही बम्बई से जहाज़ रवाना होने वाला था। शिमला से उसी समय रवाना हुए विना जहाज़ पकड़ा नहीं जा सकता था। किन्तु सायंकाल हो जाने के कारण वहाँ के म्यूनीसिपल नियम के अनुसार शिमला से कालका के लिए मोटर जा नहीं सकती थी। इस पर होम सेक्रेटरी श्री इमर्सन ने रेल्वे अधिकारियों से बातचीत कर महात्माजी के लिए शिमला से कालका तक के लिए स्पेशल ट्रेन की व्यवस्था की, कालका में मेल को इस ट्रेन के इन्तज़ार में रोका गया, उससे वे २९ की सुबह बम्बई पहुँचे, उनकी विदाई के लिए एकत्र एक विराट सभा में उन्होंने भाषण दिया, साथियों ने, मिले हुए केवल तीन घन्टे के अवकाश में, यात्रा की सारी तैयारी की। "राजपूताना" जहाज़ प्रतीक्षा में रुका हुआ था, अन्त में अपने निश्चित समय से दो घण्टे बाद महात्माजी को लेकर वह रवाना हुआ।

सितम्बर के दूसरे सप्ताह में महात्माजी लन्दन पहुँचे और गोलमेज़-परिषद् में सम्मिलित हुए। उसमें उन्होंने जो भाषण दिये, प्रस्तुत पुस्तक में उन्हींका सङ्कलन है। लन्दन के लिए रवाना होते समय महात्माजी ने

लिखा था—"जब मैं लन्दन की परिस्थिति पर विचार करता हूँ, साथ ही जब मैं जानता हूँ कि भारत में सब बात ठीक नहीं हुई है और दूसरी सन्धि में उदारता का नाम-निशान भी नहीं है, साथ ही उसके साथ के संस्मरण भी ज़रा भी आनन्दप्रद नहीं हैं, तब मेरे हृदय में निराशा व्याप्त होने के लिए कुछ बाक़ी रह नहीं जाता। क्षितिज तो, जितना सम्भव हो सकता है, सर्वथा अन्धकारपूर्ण है। यह सर्वथा सम्भव है कि मैं ख़ाली हाथ लौटूँ। ऐसी ही स्थिति में मनुष्य को निर्बलता का भान होता है। किन्तु दूसरी सन्धि द्वारा ईश्वर ने मेरे लन्दन जाने का मार्ग सुगम किया है, इससे मैं आशायुक्त होकर इस यात्रा के लिए रवाना हो रहा हूँ, और ऐसा मालूम होता है कि महासभा ने मुझे जो आदेश दिया है,यदि उसके प्रति मैं बेवफ़ा साबित नहीं हुआ, तो जो परिणाम होगा, वह राष्ट्र के लिए शुभ ही होगा।" इससे उनकी इस समय की मनस्थिति का परिचय मिल जाता है। इससे यह सिद्ध है कि वे यह आशा लेकर नहीं गये थे कि वहाँ से वे स्वराज्य लेकर लौटेंगे। उन्होंने लार्ड इर्विन को, जिन्हें वे सच्चा अंग्रेज़ मानते थे, समझौते के समय वचन दिया था कि यदि स्थिति अनुकूल हुई तो महासभा गोलमेज़-परिषद् में भाग लेने को तैयार रहेगी और इस प्रकार वे परिषद् में अवश्य सम्मिलित होंगे। साथ ही वे ब्रिटिश जनता के दिल पर यह छाप बिठा देना और इस प्रकार संसार को यह दिखा देना चाहते थे कि महासभा ही देश की एकमात्र राजनैतिक प्रतिनिधिसंस्था है और वह सहयोग का कोई भी अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहती, यदि सहयोग से काम हो सकता हो, तो वह आवश्यकता से अधिक एक क्षण के लिए भी युद्ध जारी रखना पसन्द नहीं करती और

इसलिए यदि इंग्लैंड चाहता है कि भारत से उसका सम्बन्ध बना रहे, तो उसका कर्तव्य है कि यह उसे गुलाम नहीं, बराबर का साझीदार बना-कर रक्खे। इसीमें उसका हित है, इसीमें उसका कल्याण है। अपने इसी वचन की पूर्ति और उक्त उद्देश्य की सिद्धि के लिए वे वहाँ गये थे। महासभा से उन्होंने यह आदेश प्राप्त किया था कि परिषद् में वे पूर्ण स्वराज्य का, जिसमें कि सेना, राजस्व तथा परराष्ट्र-सम्बन्ध आदि विषयों पर देश का पूर्णाधिकार होने की बात शामिल है, दावा पेश करें। महात्मा-जी के इन भाषणों को पढ़ जाने पर पाठक देखेंगे कि किस तत्परता के साथ उन्होंने महासभा के इस आदेश का पालन किया है। अपने पहले ही भाषण में उन्होंने जिस कुशलता और दृढ़ता के साथ महासभा के उक्त दावे को पेश किया, उसे देखकर प्रतिपक्षियों तक को दंग रह जाना पड़ा था। अन्य अनेक सदस्यों की तरह वे अपना यह भाषण लिखकर नहीं ले गये थे। उन्होंने जो कुछ कहा ज़बानी ही कहा। किन्तु वह इतना नपा-तुला, और युक्तियों, दलीलों एवं वास्तविकता से इतना परिपूर्ण है कि प्रतिपक्षी के हृदय पर भी उसकी छाप पड़े बिना रह नहीं सकती। परिषद् में नये-नये प्रश्न उठते थे और सारा समय उनपर वाद विवाद करने में ही समाप्त हो जाता था। सरकारी सदस्यों को तो इसकी परवाह होनी ही क्यों थी, अन्य सदस्यों तक को समय की इस प्रकार बरबादी का कुछ ख़याल न था। किन्तु महात्माजी को यह सह्य न हो सका। उन्होंने अपने दूसरे भाषण के आरम्भ में ही समिति के अध्यक्ष से इस बात की शिकायत करदी। उन्होंने स्पष्ट ही कहा कि सम्राट के सलाहकार इस बात को जानते हुए भी कि हमें समुद्र पार से अपने-अपने काम से

बुलाकर, यहाँ बुलाया गया है, वे हमें यह नहीं बताते कि उनके विचार क्या हैं। इस समिति को बहस मुबाहिसा अथवा वाद-विवाद की सभा बनाने के बजाय उन्हें चाहिए कि वे अपनी योजनाएँ हमारे सामने रक्खें कि वे हमारे भग्य का निपटारा किस प्रकार करना चाहते हैं, ताकि हम उन पर विचार कर सकें। इसी प्रकार जब अल्प-संख्यक जातियों की समस्या के हल करने से उन्हें सफलता न मिली, तो इसका कारण बताते हुए उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि जो लोग यहाँ इकट्ठे किये गये हैं, वे राष्ट्र के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं, वरन् सरकार द्वारा नामज़द किये गये हैं। साम्प्रदायिक वैमनस्य के सम्बन्ध में 'अपनी बात' कहते हुए उन्होंने कहा था—"यह झगड़ा बहुत पुराना नहीं है। मैं तो यह कहने का साहस करता हूँ कि अँग्रेजों के आगमन के साथ ही इसका जन्म हुआ है। × × × जब तक विदेशी शासनरूपी तलवार एक जाति को दूसरी जाति से और एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी से विभक्त करती रहेगी, तबतक साम्प्रदायिक समस्या का कोई भी वास्तविक स्थायी हल नहीं होगा; न इन जातियों के बीच स्थायी मैत्री ही होगी।"

इस प्रकार उनके प्रत्येक भाषण में पग-पग पर उनकी ओजस्विता और स्पष्टवादिता की मुहर लगी दिखाई देती है। जैसी कि उन्हें आरम्भ में ही आशङ्का थी, वे खाली हाथ ही लौटे, किन्तु न तो वे देश के प्रति बेवफ़ा सिद्ध हुए, न उन्होंने देश के आत्मसम्मान को किसी प्रकार नीचा ही होने दिया। उन्होंने यह भलीभांति सिद्ध कर दिया कि उनकी आवाज़ ही राष्ट्र की आवाज़—'राष्ट्र वाणी'—है; और मोह-मदान्ध इंग्लैण्ड आज चाहे भले ही उस पर ध्यान न दे, किन्तु समय आयगा, जब कि आत्मबलिदान

की अग्नि में तपे हुए देश के इस दावे पर उसे ध्यान देना होगा, और उसकी इच्छा हो या अनिच्छा देश उसके हाथों से अपनी स्वतन्त्रता लेकर रहेगा।

महात्माजी के ये भाषण 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित होते रहते थे। उन दिनों मैं वहां 'हिन्दी नवजीवन' में संयुक्त-सम्पादक की हैसियत से काम कर रहा था। अतः स्वभावतः ही इनके अनुवाद का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। परिस्थिति वश बीच-बीच में मुझे अजमेर चले आना पड़ा। उस समय अक्सर यह काम आदरणीय बन्धु श्री मोहनलालजी भट्ट को करना पड़ता था। स्थानीय दो-एक अन्य मित्रों से भी मुझे इसमें काफ़ी सहायता मिली है, अतः इस सबके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

दो शब्द अनुवाद की भाषा के सम्बन्ध में। पाठकों को इसमें कुछ अटपटापन मालूम होगा। इसके दो कारण हैं। एक तो महात्माजी जो कुछ भी लिखते या बोलते हैं, वह प्रायः सूत्ररूप होता है। सूत्र का ऐसा अनुवाद, जिसमें भावों की पूरी रक्षा हो सके, सरल काम नहीं है। अच्छे-अच्छे भाषा-विज्ञ इसमें चकरा जाते हैं; फिर मुझ जैसे नये रंगरूट का तो कहना ही क्या। दूसरे भाषणों का विषय सर्वथा राजनैतिक है। इसमें पग-पग पर ऐसे पारिभाषिक (Technical) शब्दों एवं वाक्य समूहों का प्रयोग हुआ है, जिनका कि भावों को अक्षुण्ण बनाये रखकर सरल और सीधी भाषा में अनुवाद कर सकना उतना ही दुस्तर कार्य था। अतः आशा है, पाठक इस त्रुटि के लिए मुझे क्षमा करेंगे।

अजमेर,
बैशाखी पूर्णिमा १९८९ — विनीत—
शङ्करलाल वर्मा

म० गाँधी

राष्ट्र-वाणी

[१]

१

राष्ट्रीय माँग

आरम्भ में ही मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि आपके सामने महासभा की स्थिति रखने मे मुझे जरा भी दुविधा नहीं है। मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि इस उप-समिति में और यथासमय गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होने के लिए मैं सर्वथा सहयोग के भाव लेकर और अपनी शक्तिभर समझौते का उपाय करने के उद्देश से ही लन्दन आया हूँ। साथ ही मैं सम्राट की सरकार को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि किसी भी अवस्था में अधिकारियो को कठिनाई में डालने की मेरी इच्छा न है, न आगे होगी; और यही विश्वास मैं यहाँ के अपने साथियो को दिला देना चाहता हूँ कि हमारे दृष्टिकोण में कितना ही अन्तर हो, मैं किसी भी प्रकार या रूप से उनके मार्ग में रुकावट न डालूँगा। इसलिए मेरी स्थिति यहाँ पर सर्वथा आपकी और सम्राट की सरकार की सद्भावना पर निर्भर करती है। किसी भी समय यदि मुझे यह मालूम हुआ कि इस परिषद् में मेरी कुछ उपयोगिता नहीं है, तो इससे अलग हो जाने में मुझे

जरा भी हिचकिचाहट न होगी। इस उप-समिति और परिषद् के प्रवन्धकों से भी मैं यही कहना चाहता हूँ कि उनके केवल संकेत मात्र से मैं अलग हो जाने में जरा भी न हिचकिचाऊँगा।

ये वातें इसलिए कहनी पड़ती हैं कि मैं जानता हूँ कि सरकार और महासभा के वीच मौलिक मत-भेद है, और सम्भव है कि मेरे साथियो और मुझमें भी महत्त्वपूर्ण मत-भेद हो, और मैं एक मर्यादा से बँधा हुआ हूँ जिसके अन्तर्गत मुझे काम करना होगा। मैं तो भारतीय राष्ट्रीय महासभा का एक गरीव और नम्र प्रतिनिधि मात्र हूँ, और इसलिए हमारे लिए यह वता देना अच्छा होगा कि महासभा क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। तव आप मेरे साथ सहानुभूति करेंगे, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे कन्धो पर जिम्मेवारी का जो वोझ है वह वहुत भारी है।

महासभा क्या है ?

यदि मैं गलती नहीं करता हूँ, तो महासभा भारतवर्ष की सव से वड़ी संस्था है। इसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, और इस अर्से में वह विना किसी रुकावट के वरावर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों में वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नहीं है। वह सर्व भारतीय हितों और सव वर्गों की प्रतिनिधि

होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सब से बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ में एक अंग्रेज़-मस्तिष्क में हुई। एलन ओक्टेवियस ह्यूम को कॉंग्रेस के पिता की तरह हम जानते हैं। दो महान् पारसियों—फ़ीरोज़शाह मेहता और दादाभाई नौरोजी ने, जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता अनुभव करता है, इसका पोषण किया। अपने आरम्भ से ही महासभा में मुसलमान, ईसाई, एंग्लो-इण्डियन आदि शामिल थे, या मुझे यों कहना चाहिए, इसमें सब धर्म, सम्प्रदाय और हितों का थोड़ी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने-आपको महासभा के साथ मिला दिया था। मुसलमान और निस्सन्देह पारसी भी महासभा के सभापति रहे हैं। मैं इस समय कम-से-कम एक भारतीय ईसाई श्री डवल्यू, सी. बनर्जी का नाम भी ले सकता हूँ। विशुद्ध भारतीय श्री काली चरण बनर्जी ने, जिनके परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, अपनेको महासभा के साथ मिला दिया था। मैं, और निस्सन्देह आप भी अपने बीच श्री के. टी. पाल का अभाव अनुभव कर रहे होंगे। यद्यपि मैं नहीं जानता लेकिन जहां तक मुझे मालूम है, वे अधिकारी-रूप से कभी महासभा में शामिल नहीं हुए, फिर भी वे पूरे राष्ट्रवादी थे।

जैसा कि आप जानते हैं, स्वर्गीय मौ० मुहम्मदअली, जिनकी उपस्थिति का भी आज यहाँ अभाव है महासभा के सभापति थे, और इस समय महासभा की कार्य-समिति के १५ सदस्यो में ४ सदस्य मुसलमान हैं। स्त्रियाँ भी हमारी महासभा की अध्यक्षा रह चुकी हैं—पहिली श्री एनी बीसेण्ट थीं और दूसरी श्रीमती सरोजिनी नायडू,। श्रीमती नायडू कार्य-समिति की सदस्या भी हैं; और इस प्रकार यदि हमारे यहाँ जाति और धर्म का भेद-भाव नहीं हैं, तो किसी प्रकार का लिंग-भेद भी नहीं हैं।

महासभा ने अपने आरम्भ से ही कथित 'अछूतो' के काम को अपने हाथ मे ले रक्खा है। एक समय था जब कि महासभा अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के समय अपनी सहयोगी संस्था की तरह सामाजिक परिषद् का भी अधिवेशन किया करती थी, जिसके काम को स्वर्गीय रानाडे ने अपने अनेक कामों में का एक बना कर उसे अपनी शक्तियाँ समर्पित की थीं। आप देखेंगे कि उनके नेतृत्व में सामाजिक परिषद् के कार्य-क्रम में अछूतों के सुधार के कार्य को एक खास स्थान दिया गया था। किन्तु सन् १९२० मे महासभा ने एक बड़ा कदम बढ़ाया और अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को राजनैतिक मंच का एक आधार-स्तम्भ बनकर राजनैतिक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग बना दिया। जिस प्रकार

महासभा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और इस प्रकार सब जातियों के परस्पर ऐक्य को स्वराज्य प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझती थी, उसी तरह पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए छूआछूत के पाप को दूर करना भी वह अनिवार्य समझने लगी।

सन् १९२० मे महासभा ने जो स्थिति ग्रहण की थी, वही आज भी बनी हुई है और इसलिए आप देखेंगे, कि महासभा ने अपने आरम्भ से ही अपने-आपको सच्चे अर्थों मे राष्ट्रीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

यदि महाराजागण मुझे आज्ञा देंगे तो मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि आरम्भ में ही महासभा ने आपकी भी सेवा की है। मैं इस समिति को याद दिलाना चाहता हूँ कि वह व्यक्ति भारत का वृद्ध पितामह ही था, जिसने काश्मीर और मैसूर के प्रश्न को हाथ मे लेकर सफलता को पहुँचाया था और मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि ये दोनो बड़े घराने श्री दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नों के लिए कम ऋणी नहीं हैं। अबतक भी उनके घरेलू और आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप न करके महासभा उनकी सेवा का प्रयत्न करती रही है।

मैं आशा करता हूँ कि इस संक्षिप्त परिचय से, जिसका दिया जाना मैंने आवश्यक समझा, समिति और जो महासभा के दावे में दिलचस्पी रखते हैं, वे वह जान सकेंगे कि उसने जो दावा किया है, वह

उसके उपयुक्त है। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने में असफल भी हुई है; किन्तु मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप महासभा का इतिहास देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सबसे अधिक, महासभा मूल-रूप में, अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ७,००,००० गावों में बिखरे हुए करोड़ों मूक, अर्धनग्न और भूखे प्राणियों की प्रतिनिधि है; यह बात गौण है कि ये लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा भारतीय भारत अर्थात् देशी राज्यों के। इसलिए महासभा के मत से, प्रत्येक हित जो रक्षा के योग्य है, इन लाखों मूक प्राणियो के हित का साधक होना चाहिए; आप समय-समय पर विभिन्न हितो में प्रत्यक्ष विरोध देखते हैं। परन्तु, यदि वस्तुतः कोई वास्तविक विरोध हो तो, मैं महासभा की ओर से बिना किसी संकोच के यह बता देना चाहता हूँ कि इन लाखो मूक प्राणियो के हित के लिए महासभा प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी। इसलिए वह आवश्यक रूप से किसानों की संस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित् इस समिति के भारतीय सद्स्यों को भी यह जान कर आश्चर्य होगा कि महासभा ने आज 'अखिल-भारतीय-चर्खा-संघ' नामक अपनी संस्था

द्वारा क़रीब दो हजार गाँवों की लगभग ५० हजार स्त्रियों X को रोजगार में लगा रक्खा है, और इन स्त्रियो में सम्भवतः ५० प्रतिशत मुसलमान स्त्रियाँ हैं। उनमें हजारो अछूत कहानेवाली जातियो की भी हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गांवो मे प्रवेश कर चुके हैं और ७,००,००० गाँवों में, प्रत्येक गाँव में, प्रवेश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह काम मनुष्य की शक्ति के बाहर का है, किन्तु मनुष्य के प्रयत्न से हो सकता है, तो अभी आप महासभा को इन सब गाँवो में फैली हुई और उन्हे चर्खे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।

महासभा का दावा

महासभा का यह प्रतिनिधि रूप होने से, जब मैं आपको उसका आदेश पढ़कर सुनाऊँगा तो आपको उससे आश्चर्य न होगा। मैं आशा करता हूँ कि वह आपको विसंगत एवम् अप्रिय प्रतीत न होगा। आप भले ही ऐसा समझें कि महासभा जो दावा कर रही है वह सर्वथा असमर्थनीय है। जैसा भी कुछ है, मैं उसकी ओर से नम्र तरीक़े पर, किन्तु पूरी-पूरी दृढ़ता के साथ उस दावे को यहाँ पेश करूँगा। मैं अपने पूरे विश्वास और शक्ति के

X चर्खा संघ के ताज़े आंकड़ों में से मालूम होता है कि अब यह संख्या १,८०,००० है।

साथ उस दावे को पेश करने के लिए यहाँ आया हूँ। यदि आप मुझे इसके विपरीत समझा सकेंगे और यह बता सकेंगे कि यह दावा इन लाखों मूक मनुष्यों के प्रतिकूल है, तो मैं अपनी सम्मति पर पुनर्विचार करूँगा। मैं अपने विचारों में संशोधन करने को तैयार हूँ; किन्तु महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से उपयोगी हो सकने के लिए यह आवश्यक है, कि इस संशोधन के पूर्व मैं अपने मुखियाओं —महासभा के नेताओं—से इस सम्बन्ध में परामर्श कर लूँ। अब यहाँ पर मैं महासभा का वह आदेश आपको पढ़ सुनाना चाहता हूँ, जिससे कि आप मुझ पर लगाई गई मर्यादाओं को अच्छी तरह समझ सकें। करांची-महासभा ने यह प्रस्ताव पास किया था—

"यह महासभा अपनी कार्यसमिति और भारत सरकार में हुए अस्थाई समझौते पर विचार कर उसे स्वीकार करती है, और यह स्पष्ट कर देना चाहती है, कि महासभा का पूर्ण स्वराज्य का ध्येय, जिसका अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता है, ज्यों-का-त्यों कायम है। यदि ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों की किसी परिषद् में महासभा के सम्मिलित होने का द्वार खुला रहे, तो महासभा का प्रतिनिधि उक्त ध्येय की प्राप्ति का प्रयत्न करेगा, और खास कर सेना, अन्तर्राष्ट्रीय मामले, अर्थ विभाग, राजस्व और आर्थिक नीति पर देश का पूर्ण अधिकार हो, और ब्रिटिश सरकार और भारत के बीच

आर्थिक लेन-देन के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करने और भारत अथवा इंग्लैण्ड द्वारा उठाई जानेवाली क़र्ज़ की ज़िम्मेवारी का निश्चय एक निष्पक्ष अदालत द्वारा करवाने और दोनों पक्षों में से किसी की भी इच्छा होने पर साझे-दारी तोड़ देने का अधिकार रहे, इसका प्रयत्न करेगा। लेकिन महासभा के प्रतिनिधि को यह स्वतंत्रता रहेगी कि वह ऐसे समझौते को स्वीकार कर ले जो साफ़ तौर पर भारत के हित के लिए आवश्यक हो।"

इस प्रस्ताव के अनुसार प्रतिनिधि का निर्वाचन हुआ। इस आदेश को ध्यान में रखते हुए मैंने गोलमेज परिषद् द्वारा नियुक्त उपसमितियों के अस्थाई निर्णयों का यथा-साध्य ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। साथ ही मैंने प्रधान-मन्त्री के उस वक्तव्य का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, जिसमें उन्होंने सम्राट्-सरकार की नीति बतलाई है। मेरे कथन में कुछ भूल हो तो वह दुरुस्त की जा सकती है; लेकिन जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ महासभा का जो उद्देश और दावा है, उससे यह वक्तव्य कहीं पीछे है। यह ठीक है, कि मुझे ऐसे सुधार स्वीकार कर लेने की स्वतन्त्रता है, जो साफ़ तौर पर भारत के हित मे हो; लेकिन वे सब उक्त आदेश में वर्णित मूल विषय के अनुकूल होने चाहिएँ।

यहाँ मैं दिल्ली में भारत सरकार और महासभा मे हुए उस समझौते की शर्तों का ख़याल करता हूँ, जो कि मेरे

लिए एक पवित्र समझौता है। उस समझौते में महासभा ने संघशासन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है, जिसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय शासन में उत्तरदायित्व हो और साथ ही यह सिद्धान्त भी मान लिया है कि यदि भारत के हित से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ संरक्षण हों तो वे स्वीकार कर लिए जायँ।

कल किसी सज्जन ने एक वाक्य कहा था; मैं उनका नाम तो भूल गया; किन्तु उस वाक्य का मुझ पर गहरा असर पड़ा। उन्होंने कहा:—"हम केवल राजनैतिक विधान नहीं चाहते।" मैं नहीं जानता कि इस वाक्य से उनका भी वह अभिप्राय था, जो तुरन्त ही मेरे मन में उठा; किन्तु मैंने तुरन्त ही दिल में कहा इस वाक्य ने मुझे अच्छा विचार दिया है। यह सच है कि किसी भी ऐसे सर्वथा राजनैतिक विधान से, जिसके पढ़ने से तो यह मालूम हो कि भारत की जो कुछ राजनैतिक आकांक्षाएँ थीं, वे इससे मिल गईं; किन्तु वास्तव में उससे मिलता कुछ न हो, तो न तो महासभा ही, न व्यक्तिगत रूप से मैं ही उससे संतुष्ट हो सकता हूँ। यदि हम पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए तुले हुए हैं, तो इसका कारण किसी प्रकार की अहम्मन्यता नहीं है; न इसका यही कारण है कि हम चाहते हैं कि संसार के सामने यह ढिंढोरा पीटते फिरें कि हमने अंग्रेज-जनता से अब अपना सब सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। ऐसी कोई बात नहीं

है। इसके विपरीत स्वयं महासभा के इस आदेश में आप देखेंगे कि वह एक साझेदारी की कल्पना करती है; वह ब्रिटिश जनता से बराबरी के संबंध की कल्पना करती है; किन्तु वह सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए, जो दो बिलकुल समान राष्ट्रों में होता है। एक समय था जब मैं अपनेको ब्रिटिश-प्रजा समझने और कहलाने मे गौरव समझता था। पर अब तो कई वर्षों से मैंने अपनेको ब्रिटिश-प्रजा कहना छोड़ दिया है। मैं तो अब अपनेको ब्रिटिश-प्रजा कहलाने की अपेक्षा बागी कहलाना अच्छा समझता हूँ। पर एक आकांक्षा मेरे मन मे रही है, अब भी है, कि मै ब्रिटिश साम्राज्य का नही, बल्कि ब्रिटिश राष्ट्रसंघ का, यदि संभव हो तो, एक साझेदारी में और ईश्वर ने चाहा तो अविभाज्य साझेदारी में, नागरिक बनूँ; किन्तु ऐसी साझेदारी में हर्गिज़ नहीं जो एक राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र पर जबर्दस्ती लादी हो। इसीलिए आप देखेंगे कि महासभा ने यह दावा किया है कि दोनों पक्ष को यह सम्बन्ध विच्छेद करने, साझेदारी तोड़ देने का अधिकार रहे। इसलिए वह साझेदारी आवश्यक रूप से दोनो के लिए हितकारक होनी चाहिए। यद्यपि विचारणीय विषय से यह असंगत होगा, किन्तु मेरे लिए असंगत नहीं, यदि मैं यह कहूँ, जैसा कि मैंने अन्यत्र भी कहा है, कि मै आज जिम्मेदार अंग्रेज राजनीतिज्ञो के, अपनी आमदनी के अन्दर खर्च चला लेने के, घरेलू मामलों में

पूर्णरूप से फँसे रहने की बात को अच्छी तरह समझ सकता हूँ। हम उनसे इससे कम किसी बात की आशा नहीं कर सकते थे। और जब मैं लन्दन की ओर रवाना हो रहा था, मुझे खयाल आया कि क्या हम इस समिति के सदस्य इस समय ब्रिटिश-मन्त्रियों के सिर पर बोझ न होंगे; क्या हम दख़-लन्दाज़ न होंगे। और फिर भी मैंने अपने आपसे कहा कि यह सम्भव है कि हम दख़लन्दाज़ न हों, सम्भव है कि अपने घरेलू मामलों में फँसे रहने पर भी ब्रिटिश-मन्त्री स्वयं यह अनुभव करें कि गोलमेज़-परिषद् की कार्रवाई उनके लिए प्रधानतः आवश्यक है। हाँ, तलवार के बल पर भारत पर क़ब्ज़ा रक्खा जा सकता है; किन्तु इंग्लैण्ड की समृद्धि के लिए, ग्रेटब्रिटेन की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए क्या हितकर होगा ? एक गुलाम किन्तु बागी हिन्दुस्थान, या ब्रिटेन की आपत्तियों में हिस्सा बँटाने वाला और, उसकी मुसीबतों में कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर उनकी सहायता करने वाला प्रतिष्ठित साझेदार भारत ?

मेरा स्वप्न

हाँ, यदि आवश्यकता हुई तो, केवल अपनी इच्छा से, संसार की किसी एक जाति अथवा अकेले एक व्यक्ति की स्वार्थ साधना के लिए नहीं, वरन् प्रत्यक्षतः समस्त संसार के लाभ के लिए वह इंग्लैण्ड के साथ-साथ लड़ेगा। यदि मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहता हूँ, तो आप विश्वास रखिए

कि यदि मैं उसकी प्राप्ति में सहायक हो सकूँ तो, उस देश का निवासी होने के कारण कि,जिसमें संसार की एक पंचमांश मनुष्य-जाति निवास करती है। इसलिए नहीं चाहता कि मैं संसार की किसी जाति अथवा व्यक्ति को चूसूँ। यदि मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहूँ तो मैं उसके लिए उपयुक्त न होऊँगा यदि मैं प्रत्येक जाति के, चाहे वह गरीब हो या शक्तिशाली, वैसी ही स्वतन्त्रता के समान अधिकार को स्वीकार न करूँ। और इसलिए जब मैं आपके सुन्दर द्वीप के निकट पहुँचने लगा, तो मैंने अपने-मन में कहा, सम्भव है संयोग से यह सम्भव हो जाय कि मैं ब्रिटिश मन्त्रियों को यह विश्वास करा सकूँ कि शक्ति के बल से अधिकृत नहीं, वरन् प्रेमरूपी रेशमी डोरी में बँधा हुआ भारत, आपके एक साल के बजट को ही नहीं अनेक वर्षों के बजट को ठीक करने में सच्चा सहायक सिद्ध होगा। ऐसे दो राष्ट्र यदि मिल जायँ तो क्या नहीं कर सकते; जिनमें एक मुट्ठीभर होने पर भी बहादुर है; कदाचित् जिसकी बहादुरियों का लेखा अनुपम है; जो गुलामी की प्रथा से युद्ध करने के लिए प्रसिद्ध। है, और जिसका एकबार नहीं अगणितबार कमजोरों की रक्षा करने का दावा है, और दूसरा एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है, करोड़ों की आबादी वाला है, शानदार भूतकाल जिसके पीछे है, हाल में जो दो महान् संस्कृतियों का प्रतिनिधि।है जिसमें,

एक बहुत बड़ी तादाद में ईसाई आबादी भी है, तथा जिसमें संख्या में अँगुलियों पर गिने जाने योग्य, किन्तु परोपकार और व्यवसाय में बढ़े हुए पारसी हैं। भारतवर्ष में इन सब संस्कृतियों का केन्द्रीकरण हुआ है; यह कल्पना करके कि, यदि ईश्वर यहाँ एकत्रित हिन्दू और मुसलमान प्रतिनिधियों को ऐसी सद्बुद्धि दे कि वे आपस के मतभेद को भूलकर आपस में सम्मानप्रद समझौता कर लें, वह देश और यह देश दोनों एकसाथ मिल जायँ। मैं फिर अपने से और आपसे यह प्रश्न करता हूँ कि क्या एक स्वाधीन भारत, ग्रेटब्रिटेन की तरह पूर्ण स्वतन्त्र भारत, इन दोनों देशों की सम्मानप्रद साझेदारी दोनों के लिए लाभप्रद नहीं हो सकती; क्या वह इस महान् राष्ट्र के घरेलू मामलों तक में सहायक नहीं हो सकती ? मैं इस आशा के स्वप्न के साथ यहाँ पहुँचा हूँ और अभीतक उस सुख-स्वप्न को क़ायम रख रहा हूँ।

इतना कह चुकने पर कदाचित् अब मेरे लिए विशेष कुछ कहने को नहीं रह जाता। फिर आप लोग तफ़सीली बातें तय करते रहेंगे, और मुझे आपको यह बताने की ज़रूरत न रहेगी कि सेना के नियन्त्रण, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों और अर्थविभाग पर अधिकार तथा राजस्व और आर्थिक नीति के सञ्चालन आदि से मेरा क्या आशय है। मैं तो आर्थिक लेन-देन के प्रश्न की तफ़सील में, जिसे कल एक

मित्र ने अत्यन्त पवित्र प्रश्न बताया था, नहीं पड़ना चाहता। मैं उनके विचार से सहमत नहीं हूँ। यदि किसी साझेदार का हिसाब होता हो तो उसके लेखे-जोखे की जाँच और तोड़-जोड़ की आवश्यकता रहती है, और महासभा यह कहकर, किसी अशिष्टाचरण की दोषी न बनेगी कि राष्ट्र अपने तईं यह समझ ले कि वह कितनी जिम्मेवारी अपने सिर पर लेगा और कितनी उसे नहीं लेनी चाहिए। इस जाँच और निरीक्षण की माँग केवल भारत के ही हित के लिए नहीं, वरन् दोनो देशों के हित के लिए है। मुझे निश्चय है कि ब्रिटिश जनता भारत पर कोई ऐसा बोझ नहीं लादना चाहती, जो न्यायतः उसे नही उठाना चाहिए, और महासभा की ओर से यहाँ मैं यह घोषित कर देना चाहता हूँ कि महासभा किसी भी ऐसे दावे या जिम्मेदारी से इनकार न करेगी जो न्यायतः उसे उठानी चाहिए। यदि हमें समस्त संसार का विश्वासपात्र बनकर एक प्रतिष्ठित राष्ट्र की तरह रहना है, तो उचित कर्जे की हम एक-एक पाई अपने खून तक से चुकायँगे।

मैं नहीं समझता कि आपको महासभा के इस प्रस्ताव की तफसील मे ले जाऊँ और उसकी प्रत्येक धारा का महासभा के शब्दो में अर्थ समझाऊँ। यदि ईश्वर ने चाहा कि समिति की आगे की कार्रवाई में, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ती जाय, मैं भाग लेता रहूँ, तो मैं आपको इन

धाराओं का आशय समझा सकूँगा। कार्रवाई के दौरान में मैं आपको संरक्षणों का आशय भी बतलाऊँगा। लेकिन मैं समझता हूँ कि मैं काफ़ी कह चुका हूँ और लार्ड चांसलर महाशय, आपके उदार अनुग्रह से, इस समिति का काफ़ी समय ले चुका हूँ। वास्तव में मैंने इतना समय लेने का ख़याल न किया था, लेकिन मैंने अनुभव किया कि मैं जिस उद्देश्य से यहाँ आया हूँ उसके प्रति न्याय न करूँगा, यदि मैं इस समय भी मेरे हृदय में जो कुछ है वह सब निकालकर इस समिति और ब्रिटिश राष्ट्र के सामने, जिसके कि हम भारतीय प्रतिनिधि आज मेहमान हैं, न रख दूँ। मैं यह विश्वास लेकर यहाँ से जाना पसन्द करूँगा कि ब्रिटेन और भारत में मैं बराबर की साझेदारी का नाता जोड़ सका।

मैं यह कहने के सिवा और अधिक कुछ नहीं कर सकता कि जबतक मै यहाँ रहूँगा मैं ईश्वर से बराबर यही प्रार्थना करता रहूँगा कि यह उद्देश्य सफल हो। लार्ड चांस-लर महाशय, यद्यपि मैंने लगभग ४५ मिनट ले लिये; लेकिन आपने मुझे नहीं रोका; अतः आपके इस सौजन्य के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं इस अनुग्रह का अधिकारी नहीं था इसलिए मैं आपको पुनः धन्यवाद देता हूँ।

[२]

धारा सभायें

एक शिकायत

लार्ड चान्सलर महाशय, मैं बड़ी हिचकिचाहट के साथ, इस बहस में भाग ले रहा हूँ। इसके पहले कि उन बहुत-सी बातों पर, जो बहस के लिए यहाँ नोट की गई हैं, विचार करने के लिए आगे बढ़ूँ, मैं आपकी इजाजत से उस भाव के बोझ से, अपनेको हलका कर लेना चाहता हूँ जो सोमवार से मुझे क्लेश पहुँच रहा है। मैं उन बहसों को, जो इस समिति में होती रही हैं; बड़े ग़ौर से देखता रहा हूँ। मैंने प्रतिनिधियो की सूची का अध्ययन करने का प्रयत्न किया, जो पहले नहीं कर पाया था, और सबसे पहला दुःखद भाव जो मेरे मन में पैदा हुआ वह यह है कि हम लोग राष्ट्र के, जिसका प्रतिनिधित्व हमें करना चाहिए, चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं; वल्कि हम लोग सरकार के चुने हुए हैं। मैं भारत के भिन्न-भिन्न पत्तों और दलों को अनुभव से जानता हूँ, इसलिए जब मैं सूची पर ग़ौर करता हूँ, तो मैं देखता हूँ कि यहाँ ऐसे कुछ व्यक्तियों का अभाव है,

जिनकी उपस्थिति आवश्यक थी; इससे मैं प्रतिनिधियों के चुनाव के सम्बन्ध में अस्वाभाविकता के भाव से दु:खी हूँ।

अस्वाभाविकता अनुभव करने का मेरा दूसरा कारण यह है कि इन कार्यवाहियों का अन्त होगा और ये हमें वास्तव में किसी ओर ले जायँगी, यह मुझे दिखाई नहीं पड़ता है। यदि हम लोग इसी प्रकार से आगे बढ़े तो मैं नहीं समझता कि इस समिति में उठे हुए बहुत-से प्रश्नों पर बहस कर चुकने के बाद हम किसी नतीजे पर पहुँच सकेंगे।

इसलिए, लार्ड-चान्सलर महोदय, सबसे पहले मैं अपनी हार्दिक सहानुभूति आपके साथ प्रकट करूँगा कि आप बड़े धैर्य और सौजन्य से पेश आ रहे हैं। मैं सचमुच आपको इस कष्ट के लिए, जो आप इस समिति में उठा रहे हैं, धन्यवाद देता हूँ। और मैं आशा करता हूँ कि आपका और हमारा काम पूरा होने पर, मेरे लिए यह संभव होगा कि, जब हम लोग कुछ वास्तविक परिणाम को देखने के लिए योग्य हो सकें या विवश किये जायँ तो मैं फिर आपको बधाई दूँ।

क्या मैं यहाँ पर सम्राट् के सलाहकारों के ख़िलाफ़ एक नम्र और विनीत शिकायत कर सकता हूँ? हम लोगों को समुद्र-पार से लाकर इकट्ठा करके—और मैं जानता हूँ कि इस बात को जानते हुए कि बिना किसी अपवाद के हममें

से सर्व लोग उसी तरह अपने कामों में संलग्न हैं, जैसे कि वे स्वयं हैं, हम लोग अपने-अपने कामो को छोड़ कर यहाँ इकट्ठे हुए हैं—क्या यह उनके लिए सम्भव नहीं कि वे हमें रास्ता दिखावें? क्या मैं आपके द्वारा उनसे दरख्वास्त नहीं कर सकता कि वे हमें बतावें कि उनके विचार क्या हैं? यदि मैं आपके सामने यह कहने का साहस करूँ कि मैं प्रसन्न होऊँगा, और मेरा खयाल है कि यही ठीक तरीका होगा, कि वे हम लोगों की सम्मिति लेने के लिए हमारे सामने अपने निश्चित प्रस्ताव रक्खें। यदि ऐसा किया गया तो मुझे इसमें सन्देह नहीं कि हम लोग किसी न किसी निर्णय पर पहुँच सकेंगे, फिर वह चाहे अच्छा हो या बुरा, सन्तोषजनक हो अथवा असन्तोषजनक। इसके विपरीत यदि हम लोग इस समिति को बहस-मुबाहिसे की समिति बनादें, जिसका हरेक सदस्य जुदे-जुदे मुद्दो पर धारा-प्रवाह भाषण दे, तो मैं नही समझता कि हम लोग उस ध्येय की कोई सेवा कर सकेंगे और उसे आगे बढ़ा सकेंगे, जिसके लिए कि हम लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि आप कर सकें तो यह लाभदायक होगा कि एक उप-समिति मुकर्रर कर दी जाय, जो किसी नतीजे पर पहुँचने के लिए आपको कुछ विचार दे सके, जिससे हमारी कार्यवाही उचित समय में खतम हो जाय। मैंने केवल आपके तथा सदस्यों के विचार के लिए

ही इन सूचनाओं को आपके सामने रक्खा है कि, जिससे कदाचित आप कृपा कर सम्राट् के सलाहकारों के सामने ये सूचनायें विचारार्थ पेश करें।

मैं चाहता हूँ कि वे हमें रास्ता बतावें और अपनी योजनायें सबके सामने रक्खें। मैं चाहता हूँ कि वे हमें बतावें कि मान लीजिए कि यदि हम लोग उन्हे अपने भाग्य का निपटारा करने के लिए पञ्च नियुक्त करें तो, वे क्या करेंगे ? यदि वे हमारी राय और मशवरा माँगने की भलमनसाहत दिखावेंगे तो हम लोग अपनी-अपनी राय देंगे। यह वास्तव में एक अच्छा उपाय होगा, बनिस्वत इसके कि हम लोग निराशाजनक अनिश्चितता तथा निरन्तर विलम्ब की अवस्था में पड़े रहें।

इतना कहने के बाद अब मैं 'दूसरे शीर्षक' के अन्तर्गत विचारणीय प्रश्नों पर कुछ तजवीज पेश करने का साहस करूँगा। मेरी वही कठिनाई है जिसका सामना सर तेजबहादुर सप्रू को करना पड़ा। यदि मैं उन्हें ठीक-ठीक समझा हूँ तो उनका कहना है कि वह इस बात से परेशान हो गये कि उनसे विभिन्न शीर्षकान्तर्गत सूक्ष्म-सूक्ष्म बातों पर बोलने को तो कहा गया; किन्तु उन्हें यह न बताया गया कि वास्तव में मताधिकार क्या होगा। व उनकी तरह उसी कठिनाई का सामना मुझे भी करना पड़ेगा। लेकिन मेरे सामने एक दूसरी कठिनाई और भी है। मैं उप-समिति के सामने महासभा के

आदेश को पेश कर चुका हूँ। उसी आदेश के अनुसार मुझे प्रत्येक उप-शीर्षक पर बहस करनी होगी। इसलिए इन उप-शीर्षकों में से कुछ पर मैं महासभा के आदेश के अनुसार अपनी तजवीज और सम्मति पेश करूँगा। यदि उप-समिति इस बात को नहीं जानती कि उसका उद्देश्य क्या है तो मेरी सम्मति जो मैं दूँगा, उपसमिति के लिए, वास्तव में, उसका कोई मूल्य नहीं होगा। उक्त आदेश की दृष्टि से ही मेरी राय की कीमत हो सकती है। जब मैं उन शीर्षकों पर विचार करूँगा तब मेरा अर्थ स्पष्ट हो जायगा।

रियासतें

उप-शीर्षक (१) के सम्बन्ध में जब कि मेरी सहानुभूति व्यापक रूप से डा० अम्बेडकर के साथ है, मेरी बुद्धि सर्वथा श्री गोविन जोन्स तथा सर सुलतान अहमद की ओर जाती है। यदि हमारी उप-समिति एक-विचार की होती, जिसके सदस्य मत देकर निर्णय करने के अधिकारी होते, तो उस दशा में मैं डा० अम्बेडकर के साथ बहुत दूर तक जा सकता था; लेकिन हमारी स्थिति वैसी नहीं है। वर्तमान उप-समिति बड़ी बेमैल है, उसका प्रत्येक सदस्य या सदस्या पूर्ण स्वतन्त्र और अपने विचार प्रकट करने का या की अधिकारी या अधिकारिणी हैं। ऐसी दशा में मेरी नम्र सम्मति में हमें रियासतों से यह कहने का अधिकार नहीं है कि वे क्या करें और क्या न

करें। ये रियासतें बड़ी उदारता के साथ हमारी सहायता करने के लिए आगे आई हैं और कहती हैं कि वे हमारे साथ संघ में शामिल होंगी, और कदाचित् अपने वे कुछ अधिकार भी छोड़ देने के लिए तैयार हो जायँ, जिनका विपरीत दशा में वे अकेले ही उपभोग करतीं। उस हालत में मैं इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकता कि सर सुल-तानअहमद की इस राय का, जिसकी कि श्री गोविन जोन्स ने भी ताईद की है, समर्थन करूँ कि अधिक-से-अधिक हम जो कर सकते हैं वह यही है कि हम रियासतों के साथ विनय करें और उन्हें अपनी निजी कठिनाइयाँ बतावें; किन्तु इसके साथ ही मैं यह खयाल करता हूँ कि हमें उनकी खास कठिनाइयों को भी समझ लेना चाहिए।

इसलिए मैं उन महान् नरेशों के विचार के लिए एक या दो सूचनायें पेश करने का साहस करूँगा, और यह मैं निवेदन करूँगा एक जनता का, जनता की ओर से निर्वा-चित, समाज की निम्नातिनिम्न श्रेणी का प्रतिनिधि होने की हैसियत से। मैं उनसे विनती करूँगा कि वे जो कोई भी योजना तैयार करें और समिति के सामने स्वीकृति के लिए पेश करें, उनके लिए उचित होगा कि वे उस योजना में प्रजा का भी उचित ध्यान रक्खें। मैं यह खयाल करता हूँ और जानता हूँ कि, उनके हृदयों में उनकी प्रजा का हित है। मैं जानता हूँ, वे उनके हितों की रक्षा का उत्साह के

साथ दावा करते हैं। किन्तु यदि सब बातें ठीक हुई तो वे 'प्रजाकीय भारत'—यदि ब्रिटिश भारत को मैं यह नाम दूँ—के साथ अधिकाधिक सम्पर्क में आवेंगे और उस भारत के निवासियों के साथ उसी तरह समान हित स्थापित करना चाहेंगे, जिस प्रकार 'प्रजाकीय भारत' 'नरेशों के भारत' के साथ समान हित स्थापित करना चाहेगा। अन्त में, कुछ भी हो, दोनों भारतों में वस्तुतः कोई भी तात्विक का या सच्चा भेद नहीं है। यदि कोई एक जीवित शरीर को दो हिस्सो में बाँट सकता हो तो आप भारत को दो हिस्सों में बाँट सकते हैं। अज्ञात समय से वह एक देश की तरह रहता आया है और कोई भी कृत्रिम सीमा उसे विभाजित कर नहीं सकती। नरेशो की प्रशंसा में यह कहना ही पड़ेगा कि जिस समय उन्होंने साफ तौर से और साहस के साथ अपने आपको संघ-शासन के पक्ष मे घोषित किया, उस समय उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे भी उसी रक्त के हैं, जिसके कि हम—वे भी हमारे ही भाई-बन्धु हैं। वे इसके विपरीत कर ही कैसे सकते थे? हमारे-उनके बीच इसके सिवा और कोई अन्तर नहीं कि हम सामान्य व्यक्ति हैं और ईश्वर ने उन्हें विशिष्ट पुरुष, नरेश बनाया है। मैं उनकी भलाई चाहता हूँ; मैं उनकी सब प्रकार की वृद्धि चाहता हूँ, और मैं प्रार्थना करता हूँ कि उनकी सुख-समृद्धि का उपयोग उनकी अपनी जनता, उनकी अपनी प्रजा की प्रगति में हो।

मैं इससे आगे न जाऊँगा; जा नहीं सकता। मैं उनसे एक प्रार्थना कर सकता हूँ। हम जानते हैं कि उनके लिए यह खुला है कि वे संघ-योजना में शरीक हों या न हों। यह हमारा काम है कि हम उनके संघ में आने का मार्ग सुगम कर दें; उनका काम यह है कि वे खुली भुजाओं से उनका स्वागत करने का हमारा मार्ग सुगम कर दें।

मैं जानता हूँ कि 'दो और लो' की इस भावना के बिना हम संघ-शासन की किसी निश्चित योजना पर न पहुँच सकेंगे और यदि पहुँचे भी तो अन्त में झगड़ कर तितर-बितर हो जायँगे। इसलिए मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि जबतक हम हृदय से उस बात को न चाहें, तबतक किसी संघ-योजना में शरीक न हों। यदि हम उसमें शरीक हों तो पूरे हृदय से हों।

मत-दाताओं की योग्यता

दूसरे शीर्षक के विषय में मैं देखता हूँ कि अपात्रता पर ही विचार किया गया है कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी चाहिए अथवा नहीं ? यद्यपि मैं जिन-सत्तावादी होने का दावा करता हूँ, फिर भी निःसंकोच कह सकता हूँ कि उम्मेदवार के लिए कुछ अपात्रता (Disqualification) निर्धारित करने अथवा किसी सदस्य को अलग करने के लिए कोई अपात्रता निश्चित करने में मत-दाता के अधिकार का कोई विरोध नहीं होता।

यह अपात्रता क्या होनी चाहिए, इस विषय पर मैं अभी चर्चा नहीं करना चाहता। अभी तो मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ। कि अपात्रता के विचार और सिद्धान्त का मैं पूरा समर्थन करूँगा।

मैं 'नैतिक पतन' शब्द से डरता नही, विपरीत इसके उसे अच्छा मैं मानता हूँ। अवश्य ही गहरे-से-गहरे विचार के बाद निर्धारित शब्दो पर भी कठिनाइयाँ तो होंगी ही; किन्तु न्यायाधीशो का काम इन कठिनाइयो को दूर करना न होगा, तो और क्या होगा? कठिनाई पड़ने पर न्यायाधीश हमारी सहायता करेंगे, और 'नैतिक पतन' में किन-किन बातों का समावेश है और किनका नहीं, यह वे हमें बतावेंगे। और यदि संयोग से मुझ जैसे सविनय भंग करनेवाले व्यक्ति के कार्य को 'नैतिक पतन' समझा जायगा, तो मैं उस निर्णय को स्वीकार कर लूँगा। मैं अपात्र अथवा अयोग्य ठहरा दिये जाने की परवा नहीं करता। कई लोगों को कठिनाइयाँ भी सहनी पड़ती हैं; किन्तु इससे मैं यह नहीं कहना चाहता कि किसी प्रकार की अपात्रता होनी ही नहीं चाहिए और यदि हो तो उससे मतदाता के अधिकार का अपहरण होता है। यदि हम कोई कसौटी अथवा आयु को मर्यादा रखना चाहें, तो मैं समझता हूँ कि हमें चारित्र्य की मर्यादा भी रखनी चाहिए।

अप्रत्यक्ष चुनाव

तीसरा विषय प्रत्यक्ष (Direct) और अप्रत्यक्ष (Indirect) चुनाव का है। अप्रत्यक्ष चुनाव का जहाँतक सिद्धान्त से मतलब है उसपर मुझे अपने साथ सहमत होते देखने के लिए, मैं चाहता हूँ कि लार्ड पील यहाँ उपस्थित होते। मैं जानकार नहीं हूँ, केवल एक सामान्य व्यक्ति की तरह बोल रहा हूँ। किन्तु 'अप्रत्यक्ष चुनाव' शब्द से मैं डरता नहीं। नहीं जानता कि इसका कोई पारिभाषिक अर्थ है; यदि कोई ऐसा अर्थ हो तो मैं उससे सर्वथा अपरिचित हूँ। मैं इसका क्या अर्थ करता हूँ, वह मैं स्वयं बता देना चाहता हूँ। यदि उसे ही अप्रत्यक्ष चुनाव भी कहा जाता हो तो मैं निश्चयपूर्वक उसके लिए चारों ओर घूमकर उसके पक्ष में बोलूँगा और संभवतः इस प्रकार के पक्ष में बहुत-सा लोकमत भी तैयार कर लूँगा। मैं बालिग मताधिकार से बँधा हुआ हूँ। किसी भी तरह हो, काँग्रेसवादियों ने उसे स्वीकार किया है। बालिग मताधिकार अनेक कारणों से जरूरी है और मेरे लिए निर्णायक कारणों में एक यह है कि वह मुझे सबको—केवल मुसलमानो की ही नहीं, प्रत्युत—अछूत, ईसाई, मजदूर तथा अन्य सब वर्गों की—उचित आकाँक्षाओ की पूर्ति के लिए समर्थ बनाता है।

जिस व्यक्ति के पास धन है वह मत दे सकता है,

किन्तु जिस व्यक्ति के पास चरित्र है पर धन अथवा अक्षर-ज्ञान नहीं वह मत नहीं दे सकता, अथवा जो व्यक्ति सारे दिन पसीना बहाकर ईमानदारी से काम करता है वह ग़रीब होने के अपराध के कारण मत न दे सके, यह कल्पना ही मुझसे नहीं सही जा सकती। यह असह्य बात है और ग़रीब-से-ग़रीब ग्रामवासी के साथ रहकर और उनमें मिल-कर और अछूत समझे जाने में अपना गौरव मानते हुए मैं जानता हूँ कि इन ग़रीब लोगो में, स्वयं अछूतों में, मान-वता के सुन्दर-से-सुन्दर नमूने मिल सकते हैं। अछूत भाई को मत न मिले इसकी अपेक्षा मैं अपना मत छोड़ देना कहीं अधिक पसन्द करूँगा।

अक्षर-ज्ञान

मैं अक्षर-ज्ञान के इस सिद्धान्त पर मोहित नही कि मत-दाता को कम-से-कम लिखने, पढ़ने और गणित का बोध होना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि मेरे भाइयो को लिखने, पढ़ने और गणित का ज्ञान प्राप्त हो; किन्तु उसके साथ ही मैं जानता हूँ कि यदि उन्हें मत देने का अधिकारी बनने के लिए पहले लिखने, पढ़ने और गणित का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक हो तो मुझे अनन्त काल तक प्रतीक्षा करनी होगी; और मैं इतने समय तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं जानता हूँ कि इनमें के करोड़ो व्यक्तियों में मत देने की शक्ति है; किन्तु हम यदि इन सबको मता-

धिकार दें तो उन सबको मतदाताओं की सूची में दाखिल करना और व्यवस्थित निर्वाचन-मण्डल तैयार करना सर्वथा असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होगा।

मैं लार्ड पील की इस आशङ्का से सहमत हूँ कि यदि हमारे निर्वाचन-मण्डल इतने बड़े हों कि हमारी उन तक पहुँच न हो सके, तो उम्मेदवार स्वयं इस महान् लोकसमूह के संसर्ग में बारम्बार न आसकेगा और उसका मत न जान सकेगा। यद्यपि व्यवस्थापिका सभा के सम्मान की मैंने कभी आकांक्षा नहीं की, फिर भी इन निर्वाचन-मण्डलों का कुछ काम मुझे करना पड़ा है, और इसलिए मैं जानता हूँ कि यह कितना कठिन काम है। जो लोग इन व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य रह चुके हैं, उनके अनुभव से भी मैं परिचित हूँ।

इसलिए हमने महासभा में एक योजना तैयार की है, और यद्यपि वर्तमान सरकार ने हमपर उद्धतपने से प्रतियोगी सरकार स्थापित करने का आरोप किया है, तो भी मैं इस आरोप को अपने ढंग से स्वीकार किये लेता हूँ। यद्यपि हमने कोई प्रतियोगी सरकार स्थापित नहीं की है, फिर भी किसी दिन वर्तमान सरकार को अलग कर देने और उचित समय पर विकास-क्रम से इस सरकार को—शासन को—हमारे अपने हाथों में ले लेने की हमारी आकांक्षा अवश्य है।

पिछले चौदह वर्ष से राष्ट्रीय महासभा के प्रस्ताव बनाने का काम करते रहने से और बीस वर्ष तक दक्षिण अफ्रिका में ऐसी ही संस्था का यही काम करने से मुझे जो अनुभव हुआ है, वह यदि मैं यहाँ बताऊँ तो आपको इसमें कुछ आपत्ति न होगी। महासभा के विधान में हमने प्रायः बालिग मताधिकार रक्खा है। हमने नाम मात्र की चार आना फ़ीस वार्षिक लगा रक्खी है। यहाँ भी यह फ़ीस रखने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं लार्ड पील के इस दूसरे भय से भी सहमत हूँ कि अपने ग़रीब देश में हमें यह भी ख़तरा है कि केवल चुनाव पर ही प्रचुर धन बरबाद न हो जाय। मै इसे टालना चाहता हूँ और इसलिए मैं तो वह रक़म वसूल भी कर लूँगा। यदि मुझे यह समझाया जाय कि चार आना भी बोझ हो पड़ेगा, तो मैं वह मान लूँगा और उसे छोड़ दूँगा। किन्तु किसी भी तरह हो, काँग्रेस-संस्था मे तो हमने वह रक्खा है।

हमारी एक दूसरी बात भी जानने योग्य है। मत देने की कार्यपद्धति के सम्बन्ध मे मैं जो कुछ जानता हूँ, उससे मालूम होता है कि मतदाताओ की सूची तैयार करने वाले जिन्हें मत देने का अधिकारी मानें उन सबका नाम सूची में लिखने के लिए बाध्य हैं; इसलिए किसीकी मत देने की इच्छा हो अथवा न हो, फिर भी वह अपना नाम मेंसूची

आया हुआ देखता है। एक प्रातःकाल उठने पर मैंने डर्बन (नेटाल) में अपना नाम मतदाताओं की सूची में देखा। वहाँ की व्यवस्थापिका सभा की स्थिति पर प्रभाव डालने की मेरी ज़रा भी इच्छा न थी, और इसलिए मैंने अपना नाम मतदाताओं की सूची मे शामिल करवाने का ज़रा भी ख़याल न किया था; किन्तु किसी उम्मेदवार को जब मेरे मत या वोट की आवश्यकता हुई, तब उसने मेरा ध्यान इस बात की ओर खींचा कि मेरा नाम मतदाताओं की सूची मे है। तबसे मुझे मालूम हुआ कि मतदाताओ की सूची किस प्रकार तैयार की जाती है।

इसलिए हमारी योजना ऐसी हो कि जिसे मत देना हो वह मत प्राप्त कर सकता है। जिसे मत की आवश्यता हो उसे वह प्राप्त करने की छुट्टी है, और वय-मर्यादा तथा सबके लिए समान रूप से लागू कोई अन्य शर्त हो तो उसे स्वीकार कर लाखो पुरुष और उसी तरह स्त्रियाँ भी मत-दाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा सकती हैं। मेरा ख़याल है कि इस प्रकार की योजना मतदाताओं की सूची को व्यवस्थित मर्यादा में रख सकेगी।

निर्वाचक संगठन

इतना होने पर भी हमारे पास लाखो मनुष्य आवेंगे, इसलिए गाँवो का सम्बन्ध प्रधान अथवा बड़ी व्यवस्थापिका सभा से जोड़ने के लिए कुछ न कुछ किये जाने की आव-

श्यकता रह जाती है। हमारे यहाँ बड़ी व्यवस्थापिका सभा से मिलती-जुलती महासमिति (आल इण्डिया कॉंग्रेस कमिटी) है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओ से मिलती-जुलती हमारे यहाँ प्रान्तीय समितियाँ हैं और छोटी-मोटी अन्य व्यवस्थापिका सभायें भी हमारे पास हैं, और हमारा शासन भी है। हमारी अपनी कार्यसमिति भी है। यह बिलकुल सच है कि इसके पीछे हमारे पास संगीनो का बल नहीं है; किन्तु हमारे निर्णयो को आगे बढ़ने और लोगों से उनका पालन कराने का जो बल हमारे पास है, वह उससे कही अधिक उत्तम एवम् बढ़ा-चढ़ा है और अभी तक हमारे सामने ऐसी कठिनाइयाँ नहीं आई हैं, जिन्हें हम हल न कर सके हों। मैं यह नहीं कह सकता कि सब अवसरों पर हम निर्णयो का पूरी-पूरी तरह से पालन करा सके हैं, किन्तु हम पूरे ४७ वर्ष तक काम करते हुए आगे बढ़ते चले आये हैं और प्रति वर्ष इस महासभा की ऊँचाई अधिक-से अधिक बढ़ती गई है।

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि हमारी प्रान्तिक समितियो को अपने निर्वाचनो के विषय में उपनियम बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। मूल आधार अर्थात् मतदाताओं की पात्रता (Qualifications) को वे बिलकुल नहीं बदल सकतीं, किन्तु अन्य सब बातें वे अपनी इच्छानुसार कर सकती हैं।

इसलिए मैं केवल एक प्रान्त का, जहाँ ऐसा होता है,

उदाहरण दूँगा। वहाँ गाँव अपनी-अपनी छोटी समितियाँ चुन लेते हैं। ये समितियाँ ताल्लुका समिति चुनती हैं, और ये ताल्लुका समितियाँ फिर जिला-समिति का चुनाव करती हैं और जिला समितियाँ प्रान्तिक समिति का चुनाव करती हैं। प्रान्तिक समितियाँ अपने सदस्य बड़ी व्यवस्थापक सभा में—यदि महासमिति को मैं यह नाम दूँ तो—भेजते हैं। इस प्रकार हम यह सब कर सके हैं। मैं इस बात की परवा नहीं करता कि इस योजना में हम ऐसा ही करेंगे या कुछ और; किन्तु हमारे यहाँ ७,००,००० गाँव हैं, इसका दिग्दर्शन मैंने अवश्य किया है। मेरा विश्वास है कि इन ७,००,००० गांवों में देशीराज्यों का भी समावेश हो जाता है। यदि मैं इसमें भूलता होऊँ तो बताये जाने पर मैं उसे दुरुस्त कर लूंगा, किन्तु मैं नम्रतापूर्वक कहूँगा कि 'प्रजाकीय भारत' में ५,००,००० या कुछ अधिक गाँव होंगे। हम ये ५,००,००० घटक (Units) बना दें। प्रत्येक घटक अपने-अपने प्रतिनिधि चुनेगा और आप चाहें तो इन प्रतिनिधियों का निर्वाचक मण्डल बड़ी अथवा संघ व्यवस्थापका सभा के प्रतिनिधि चुन देगा। मैंने तो आपको योजना की केवल रूप-रेखा बता दी है। आपको यदि यह पसन्द हो, तो तफ़सील की बातें पूरी की जा सकती हैं। यदि हमें बालिग़ मताधिकार रखना है, तो मैंने जो योजना आपको बताई है, उससे मिलती-जुलती किसी योजना का हमें आश्रय लेना

होगा। जहाँ-जहाँ उसके अनुसार काम हुआ है, मैं आपको अपना ही प्रमाण दे सकता हूँ कि वहाँ उसके बड़े सुन्दर परिणाम निकले हैं, और इन जुदे-जुदे प्रतिनिधियों के द्वारा ग़रीब ग्रामीण के साथ संबन्ध स्थापित करने में किसी तरह की कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। यह व्यवस्था बड़ी सरलता से चलती रही है और जहाँ लोगों ने उसे ईमानदारी से चलाया है वहाँ वह बड़ी तेज़ीसे और निस्सन्देह बिना किसी उल्लेखनीय ख़र्च के चली है। मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि इस योजना के अनुसार उम्मेदवार को चुनाव के लिए ६०,००० या एक लाख तक ख़र्चा करने की सम्भावना हो। ऐसे कई उदाहरण मैं जानता हूँ, जिनमें चुनाव का ख़र्च लगभग १ लाख रुपये तक पहुँच गया था; जो कि मेरे ख़याल से संसार के सबसे निर्धन देश के लिए अत्याचार था।

द्विखण्ड-व्यवस्थापिका सभा

इस विषय पर चर्चा करते हुए मैं द्विखण्ड-व्यवस्थापिका सभा (Bi-Cameral Legislature) के सम्बन्ध में मेरा जैसा भी कुछ मत है, वह आपके सामने रख देना चाहता हूँ। यदि आपकी भावुकता को चोट न पहुँचे तो मैं कहूँगा कि इस विषय में मैं श्री जोशी के साथ सहमत हूँ। निश्चय ही मुझे दो व्यवस्थापिका-सभाओं का मोह नहीं है, न मैंने उनको स्वीकार ही किया है। मुझे इस बात का

ज़रा भी भय नहीं है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा स्वतन्त्र रूपसे जल्दी में क़ानून पास कर देगी और पीछे से उसके लिए उसे पछताना पड़ेगा। प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा को बदनाम करके उसे उड़ा देना मुझे पसन्द नहीं है। मेरा ख़याल है कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका-सभा अपनी सम्हाल रख सकती है और क्योंकि, इस समय मैं संसार के सबसे ग़रीब देश का विचार कर रहा हूँ, इसलिए हम जितना कम-से-कम ख़र्च करें, उतना ही अच्छा है। मैं एक क्षण के लिए भी इस विचार से सहमत नहीं हो सकता कि प्रजाकीय व्यवस्थापिका सभा के ऊपर यदि कोई दूसरी बड़ी व्यवस्थापिका सभा न हुई, तो वह देश को बरबाद कर देगी। मुझे ऐसा कोई भय नहीं है; इसके विपरीत मुझे यह आशङ्का है कि जब कभी प्रजाकीय सभा और बड़ी सभा में मतभेद होगा तो दोनों में घनघोर संग्राम मचा जायगा। किसी भी तरह हो, यद्यपि मैं इस विषय में कोई निर्णायक तरीका अख़्तियार नहीं करता फिर भी मेरी यह निश्चित राय है कि हम केवल एक व्यवस्थापिका सभा से काम चला सकते हैं और इससे लाभ ही होगा। यदि हम अपने मन में एक सभा से काम चला लेने के लिए विश्वास पैदा कर सकें तो हम निश्चय ही एक बहुत बड़े ख़र्च से बच जायंगे। मैं लार्ड पील के इस विचार से सर्वथा सहमत हूँ कि पहिले के उदाहरणों के सम्बन्ध में हमें चिन्ता करने की

तैयार नहीं है। विशेष हितों की सूची मैंने ध्यान से सुनी है। अछूतों के विषय में, डा० अम्बेडकर का क्या कहना है, यह मैं अभी तक अच्छी तरह समझ नहीं सका हूँ; किन्तु अछूतों के हितो का प्रतिनिधित्व करने में महासभा डा० अम्बेडकर के साथ अवश्य हिस्सा लेगी। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक महासभा को जितना दूसरी किसी संस्था अथवा व्यक्ति का हित प्रिय है, उतना ही प्रिय उसे अछूतों का हित है। इसलिए इससे आगे किसी भी विशेष प्रतिनिधित्व का मै जोरों से विरोध करूँगा। बालिग़ मताधिकार में मजदूर तथा ऐसे ही अन्य वर्गों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कोई आवश्यकता नहीं, और न ज़मींदारों के लिए ही निश्चित रूप से इसकी जरूरत है; इसका कारण मैं आपको बताऊँगा। ज़मींदारों को उनकी जायदाद से वञ्चित करने की, महासभा की तथा मूक कङ्कालों की, ज़रा भी इच्छा नही है। वे तो चाहते हैं कि ज़मींदार अपने किसानों के रक्षक बनें। मैं समझता हूँ कि ज़मींदारों को तो इसी विचार मे अपना गौरव मानना चाहिए कि उनके किसान—ये लाखों ग्रामवासी—बाहर से आनेवाले दूसरे लोगों अथवा अपने में से किसी की अपेक्षा ज़मींदारों को अपना प्रतिनिधि चुनना पसन्द करेंगे।

इसलिए नतीजा यह होगा कि ज़मींदारों को अपने किसानों के साथ मिलना होगा, उनका और अपना एक

समान-हित स्थापितकरना होगा। इससे बढ़कर अच्छी बात और क्या हो सकती है ? किन्तु यदि जमींदार, दो सभा हों तो दोनों में से एक में, अथवा एक सभा हो तो उसमें अपने विशेष प्रतिनिधित्व की माँग पर जोर दें तो निःसन्देह वेहमारे बीच एक अप्रिय विवाद उत्पन्न कर देंगे। मैं आशा करता हूँ कि जमींदार अथवाऐसे किसी अन्य वर्ग की ओर से इस प्रकार की कोई माँग न की जायगी।

अब मैं अपने अंग्रेज मित्रों की ओर आता हूँ। श्री गेविन जोन्स स्वभावतः ही उनके प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं; मैं उन्हें नम्रता-पूर्वक सूचित करूँगा कि अभी तक वे विशेष अधिकार भोगते रहे हैं, यह विदेशी सरकार जितने दे सकती थी, वे सब संरक्षण वे पा चुके हैं, और उदारता-पूर्वक पा चुके हैं। अब यदि वे भारत को सर्वसाधारण जनता के साथ अपने हितों को मिला दें तो उन्हें किसी प्रकार का भय न होगा। श्री गेविन जोन्स ने कहा है कि उन्हे भय लगता है और इसके लिए एक पत्र पढ़ कर भी सुनाया है। मैंने वह पत्र नहीं पढ़ा है। सम्भव है कि कुछ भारतीय यह कहें—'हाँ, अवश्य,यदि यूरोपियन अंग्रेजहमारे द्वारा चुने जाना चाहेंगे, तो हम उन्हे न चुनेंगे।' लेकिन मैं श्री गेविन जोन्स को अपने साथ लेकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमूँगा और उन्हे बताऊँगा कि यदि वे हमारे साथी बनकर रहना चाहेगे तो एक भारतीय की अपेक्षा

उनको पहले चुना जायगा। चार्ली एण्ड्रयूज़ का उदाहरण लीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि वे भारत के किसी भी विर्नोचन-संघ की ओर से बिना किसी दिक़्क़त के चुन लिये जायँगे। उनसे पूछिए कि एक छोर से दूसरे छोर तक सारे देश ने उन्हें खुली भुजाओं से स्वीकार कर लिया है या नहीं ? मैं ऐसे कई उदाहरण दे सकता हूँ। मैं अंग्रेजों से प्रार्थना करता हूँ कि वे एक बार भारतीय जनता के सद्भाव पर जीवित रह कर देखें और अपने अधिकारों के लिए विशेष अधिकार अथवा संरक्षण की माँग न करें जो कि कार्य साधने का एक ग़लत तरीका है। मैं यह चाहता हूँ, और इसके लिए उनसे आजिजी करता हूँ कि यदि वे भारत में रहें तो हमारे होकर रहें। मैं यह अवश्य महसूस करता हूँ कि किसी भी योजना में, जो महासभा स्वीकार करे, किसी भी हालत में, विशेष हितों की रक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। बालिग-मताधिकार मिलने से विशेष हितों एवं वर्गों की रक्षा अपने-आप हो जाती है।

ईसाइयों के सम्बन्ध में एक सज्जन का जो कि अब हमारे साथ नहीं हैं, प्रमाण दूँ तो उन्होंने कहा था—"हम कोई ख़ास संरक्षण नहीं चाहते" मेरे पास ईसाई संस्थाओं के पत्र भी हैं, जिनमें वे कहती हैं कि उन्हे ख़ास संरक्षण की आवश्यकता नहीं; वे जो कुछ भी विशेष संरक्षण प्राप्त करेंगे वह अपनी नम्र सेवाओं के बल पर प्राप्त संरक्षण होगा।

वफादारी की शपथ

अब मैं एक अत्यन्त नाजुक विषय अर्थात् वफ़ादारी की शपथ पर आता हूँ। इस सम्बन्ध में मैं अभी कोई सम्मति न दे सकूँगा, क्योंकि इसके पहिले मैं यह जान लेना चाहता हूँ कि इसका रूप क्या होगा। यदि वह पूर्ण स्वतन्त्रता हो; यदि भारत को सम्पूर्ण स्वराज्य मिलता हो, तो स्वभावतः ही वफ़ादारी की शपथ का एक ही रूप हो सकता है। और यदि भारत को पराधीन रहना है, तो उसमें मेरे लिए स्थान नहीं है। इसलिए वफ़ादारी की शपथ के प्रश्न पर आज सम्मति देना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

नामजदगी

अब अन्तिम प्रश्न लीजिए। प्रत्येक सभा में यदि सरकार द्वारा नामजद सदस्यों की व्यवस्था हो तो वह कैसी होनी चाहिए? कांग्रेसवादियों ने जो योजना तैयार की है, उसमें नामजद सदस्यों के लिए कोई स्थान नहीं है। विशेषज्ञों अथवा जिनकी सलाह माँगी जाय उनके आने की बात मैं समझ सकता हूँ। वे अपनी सलाह देंगे और लौट जायंगे। उनके मत देने की आवश्यकता का मैं जरा भी औचित्य नहीं देखता। यदि हम विशुद्ध प्रजातन्त्र युक्त संस्था चाहते हों, तो उसमें तो जनता के प्रतिनिधि ही मत दे सकते हैं। इसलिए जिस योजना में सरकार के नामजद सदस्यों की गुँजायश हो, उसका मैं समर्थन नहीं कर सकता। किन्तु यह

बात मुझे फिर पाँचवीं उप-धारा पर लाती है। मान लीजिए कि मेरे दिमाग़ में यह हो—क्योंकि महासभा में भी हमने ऐसा ही रखा है—और हम चाहते भी हैं कि स्त्रियाँ चुनी जाँय, अंग्रेज़ चुने जाँय, अछूत भी अवश्य चुने जाँय और ईसाई भी चुने जाँय। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ये बहुत बड़े अल्पसंख्यक वर्ग हैं; फिर भी अल्पसंख्यक हैं, और मान लिया जाय कि निर्वाचक संघ अपने अधिकारों का ऐसा दुरुपयोग करें कि स्त्रियो, अंग्रेजों, अछूतों अथवा जमींदारों को न चुनें, और उनके इस कृत्य का कोई उचित कारण न हो, तो मैं विधान में ऐसी धारा रक्खूंगा, जिससे यह निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा उन्हें निर्वाचित अथवा नामज़द कर सके। किन्तु मै मानता हूँ कि यह चुनाव उनका होना चाहिए जो चुने जानें चाहिए थे; किन्तु चुने न गये हों। कदाचित मेरे कथन का अर्थ स्पष्ट न हुआ हो, इसलिए मैं एक उदाहरण देता हूँ। हमारी एक प्रांतीय समित का ठीक ऐसा नियम है कि एक अमुक निश्चित संख्या में मुसलमान, स्त्रियों और अछूतों का चुनाव निर्वाचक मण्डल के लिए अनिवार्यतः आवश्यक है। और यदि वह ऐसा न करें, तो पूर्व निर्वाचित समिति जो स्त्रियाँ, मुसलमान और अछूत उम्मेदवार होते हैं, उन्हींमें से निर्वाचन करती है; और इस प्रकार उक्त वर्ग की संख्या पूरी की जाती है। यह तरीक़ा है, जो हम काम में ला रहे हैं। निर्वाचक मण्डल इस प्रकार

दुर्व्यवहार न करें, इसके लिए यदि कोई प्रतिबन्धक नियम बनाया जाय तो मैं उसका विरोध न करूँगा, इसके विपरीत उसका स्वागत करूँगा। किन्तु पहिले तो मैं निर्वाचक मंडल पर यह विश्वास रक्खूँगा कि वे सब वर्गों के प्रतिनिधि चुनेंगे और सम्बन्धी अथवा सजातीयता के अन्ध भक्त न बन जायँगे। मैं आपको विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि महासभा की मनोवृत्ति जाति-पाँति के भेदभाव तथा ऊँच-नीच की नीति के सर्वथा विपरीत है। महासभा सम्पूर्ण समानता के भावों का पोषण कर रही है।

लार्ड सेङ्की महाशय, मैंने इतना समय लिया, इसके लिए मुझे खेद है, और मुझे आपने इतना अवकाश देने की उदारता दिखाई इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ।×

× इस भाषण पर यह बहस हुई :—

सर अकबर हैदरी—मैं एक सवाल पूछूँ। ५,००,००० जो गाँव या निर्वाचन क्षेत्र हैं, क्या वे पहले प्रान्तिक कौंसिल को अपने प्रतिनिधि चुनेंगे और तब प्रान्तिक कौंसिलें संघीय धारासभाओं को प्रतिनिधि चुनेंगी, अथवा प्रान्तिक कौंसिलों और संघीय धारा सभा के निर्वाचन क्षेत्र पृथक्-पृथक् रहेंगे ?

गाँधीजी—महाशय, सर अकबर हैदरी के जवाब में प्रथम तो मैं यह कहना चहता हूँ कि यदि मेरी योजना के सामान्य सिद्धांत हम स्वीकार कर लें तो वस्तुतः ये सब बातें बिना किसी भी कठिनाई के तय हो सकती हैं। लेकिन सर अकबर हैदरी ने जो खास

प्रश्न पूछा है उसके जवाब में मैं कहूँगा कि जिस योजना के प्रसार का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ उसमें गाँवों के द्वारा निर्वाचकों अथवा मतदाताओं का चुनाव होगा—कुल गाँव एक आदमी को चुनेगा और कहेगा कि "तुम हमारे लिए अथवा हमारी तरफ़ से मत दोगे।" और वह आदमी प्रान्तिक कौंसिलों या मध्यवर्ती धारा-सभा के चुनाव के लिए उनका एजेण्ट हो जावेगा।

सर अकबर हैदरी—तब वह आदमी दुहेरी स्थिति में रहेगा, प्रान्तिक कौंसिल के और साथ ही केंद्रीय धारासभा के चुनाव में भी वह मत देगा?

गाँधीजी—वह ऐसा कर सकेगा, लेकिन आज तो मैं सिर्फ़ केन्द्रीय धारासभा के चुनाव की बाबत कह रहा था।

सर अकबर हैदरी—इस प्रकार निर्वाचित प्रान्तिक कौंसिल के द्वारा केन्द्रीय धारासभा के चुनाव के किसी भी विचार को क्या आप स्वीकार न करेंगे?

गाँधीजी—मैं उसे अस्वीकार नहीं करता लेकिन वही स्वयं मुझे पसन्द नहीं आता। अगर 'अप्रत्यक्ष चुनाव' का यही विशिष्ट अर्थ हो तो मैं उसे स्वीकार नहीं करता। मैं तो 'अप्रत्यक्ष चुनाव' शब्द का व्यवहार अस्पष्ट रूप में कर रहा हूँ। अगर इसका पारि-भाषिक (Technical) अर्थ ऐसा हो तो मैं उसे नहीं जानता।

[३]

दो कसौटियाँ

जब से मैं लन्दन आया हूँ, मुझे सर्वत्र मित्रता और सच्चे प्रेम ही का अनुभव हुआ है। नित्य प्रति मेरे नये-नये मित्र बनते जा रहे हैं। किन्तु आपने (श्री० ए० फेनर ब्रोकवे ने) मुझे यह याद दिलाई है कि आवश्यकता के समय आप हमारे मित्र रहे हैं और वास्तव में आवश्यकता के समय जो काम आवे, वही सच्चे मित्र कहाते हैं। जब ऐसा प्रतीत होता था कि भारत का, या यों कहिए महासभावादियों का इस पृथ्वी पर रहनेवाले प्रायः सभीने साथ छोड़ दिया है उस समय आपने दृढ़ता-पूर्वक महासभा का साथ दिया और महासभा की जो स्थिति थी, उसे अपनी स्थिति समझी। आपने महासभा के कार्य-क्रम में अपने विश्वास को आज फिर से ताजा किया है और ऐसा करके आपने मेरे बोझ को हलका किया है।

महासभा के प्रतिनिधि की हैसियत से जो सन्देश देने के लिए मैं यहाँ भेजा गया हूँ, वह सन्देश आपको सुनाना ठीक वैसी ही बात होगी जैसा कि काशी से गंगाजल ले जाना। महासभा के दावे के औचित्य अथवा अनौचित्य

के बारे मे आप सब जानते हैं और मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके हाथों में महासभा का दावा बिलकुल सुरक्षित है। आपने आज के अपने बर्ताव से महासभा के ज़रिये भारतीय गाँवो के करोड़ों मूक और अधपेट रहनेवाले प्राणियों के साथ की अपनी मित्रता पर मुहर लगादी है।

यह कल्पना की जाती है कि आप एक दावत में शरीक हुए हैं। मैं अंग्रेज़ी दावतो से, खाने से नहीं, पर देखने से ही परिचित हूँ और जब मैंने इस मेज़ को देखा तो मैंने अनुभव किया कि आपने दावत के नाम पर कितनी क़ुर्बानी की है। मुझे आशा है कि चाय का समय आने तक त्याग की यह भावना क़ायम रहेगी, जब आप अपने लिए कुछ बढ़िया-बढ़िया चीजें काम में ला सकेंगे, जो अंग्रेज़ी होटलो और विश्रामगृहों में आपको मिला करती हैं। किन्तु इस प्रकट विनोद के पीछे गम्भीरता भी विद्यमान है। मुझे मालूम है कि आपने कुछ त्याग किया है। आपमें कुछ लोगो ने भारत की स्वाधीनता के कार्य का प्रतिपादन करने के लिए, "स्वाधीनता" शब्द का पूर्णतया अंग्रेज़ी अर्थ समझते हुए, बहुत कुछ त्याग किया है। किन्तु सम्भव है यदि आप भारत का पक्ष प्रतिपादन करते रहें तो आपको और भी अधिक क़ुर्बानियाँ करनी पड़ें। जब मैंने यहाँ आना स्वीकार किया तो मेरे मन मे किसी प्रकार का भ्रम न था। जिस दिन मैंने लन्दन में प्रवेश

किया, उस दिन आपने मेरे मुँह से सुना होगा कि मेरे लन्दन आने के प्रबलतम कारणों में से एक कारण यह था कि मैंने एक सम्मानीय अंग्रेज़ के साथ जो वादा कर लिया था, उसे मुझे पूरा करना था। उस वादे के अनुसार ही जिन अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों से मैं मिलता हूँ, उन्हें अपनी शक्ति-भर यह बतलाने की कोशिश करता हूँ कि जिस बात को महासभा चाहती है, उसे पाने के लिए भारत मुस्तहक़ है, साथ ही मै यह बताने की भी कोशिश कर रहा हूँ कि महासभा का निश्चय दृढ़ निश्चय है और मैं महासभा के आज्ञापत्र में वर्णित प्रत्येक बात की माँग करके महासभा के सम्मान की, भारतवर्ष के सम्मान की रक्षा करने के लिए यहाँ आया हूँ। महासभा के दावे मे सिवाय उस हद तक जिसकी कि आज्ञापत्र में अनुमति दी गई है, कुछ भी कमी करने का अधिकार मुझे नहीं है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरा काम कठिन है, क़रीब-क़रीब मनुष्य की शक्ति के बाहर का है। भारतवर्ष की मौजूदा स्थिति के विषय में यहाँ कितना अधिक अज्ञान फैला हुआ है। वहाँ के सच्चे इतिहास के सम्बन्ध में भी बहुत अधिक अज्ञान फैला हुआ है।

जब मैं यहाँ आनेवाला था तो मुझे शान्तिधर्म के उपासक (Quaker) एक नौजवान मित्र ने याद दिलाई थी कि मेरा यहाँ आना फिज़ूल होगा, कारण कि यहाँ

आप लोगों को बचपन से वास्तविक इतिहास नहीं, बल्कि झूठा इतिहास सिखाया गया है। ज्यों-ज्यों मैं अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क में आता हूँ, उस मित्र द्वारा कहे गये सत्य को मूर्तिमान् रूप में देखता हूँ। उनके लिए यह समझना महा कठिन, प्रायः असम्भव-सा है कि कम-से-कम भारतवासी तो यही मानते हैं कि भारत में अंग्रेजी शासन का कुल परिणाम राष्ट्र के लिए उपयोगी साबित होने की अपेक्षा हानिकर ही साबित हुआ है। अंग्रेजों के सम्पर्क से होनेवाली भारत की भलाइयों की ओर निर्देश करना फ़िजूल है। अधिक महत्व की बात तो यह है कि हानि-लाभ दोनों का विचारकर यह मालूम किया जाय कि भारत को क्या-क्या भुगतना पड़ा है।

मैंने दो अचूक कसौटियाँ निश्चित की हैं। क्या यह सही है या नहीं कि आज भारत दुनिया भर में सब से ग़रीब देश है और उसमें साल में छः महीने लाखों आदमी बेकार रहते हैं? इसी तरह क्या यह सही है या नहीं कि भारत को सत्वहीन देश बना दिया गया है; अनिवार्य निःशस्त्रीकरण के द्वारा ही नहीं, बल्कि ऐसी अनेक सुविधाओं से वंचित रख कर जिनका एक स्वतंत्र देश के नागरिक सदा उपयोग कर सकते हैं?

यदि जाँच करने पर आपको पता चले कि इन दोनो परीक्षाओं में इंग्लैंड असफल हुआ है—मैं यह नहीं कहता

कि बिलकुल ही असफल हुआ है, बल्कि एक बड़ी हद तक असफल हुआ है—तो क्या अब वह वक्त नहीं आ गया है कि इंग्लैंड अपनी नीति बदले ?

जैसा कि एक मित्र ने कहा है और जैसा कि स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने हजारों ही सभामंचो पर से बार-बार कहा है 'स्वतंत्रता और स्वाधीनता भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है।' मेरे लिए यह सिद्ध करना आवश्यक नहीं है कि ब्रिटिश शासन अन्त में ब्रिटिश कुशासन ही साबित हुआ है। मेरे लिए इतना कह देना ही काफी है कि चाहे कुशासन हो और चाहे सुशासन, भारत तत्काल स्वाधीनता प्राप्त करने का अधिकारी है, भारत के करोड़ो बेजबानों की ओर से उनकी मॉग की गई है।

यह कहना कोई जवाब में जवाब नहीं है कि भारत में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो 'स्वाधीनता' और 'स्वतंत्रता' के शब्दों तक से डरते हैं। हममें से, मैं क़बूल करता हूँ कि, कुछ ऐसे हैं जो, यदि भारत से कहा जानेवाला 'ब्रिटिश-संरक्षण' हटा लिया जाय तो, भारत की स्वाधीनता के बारे मे बात करने से भी डरेंगे। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि क्षुधापीड़ित लाखो भारतीयो और राजनीति समझनेवाले लोगो को ऐसा कोई भय नहीं है और वे स्वतंत्रता की कीमत चुकाने को तैयार हैं। किन्तु जबतक महासभा अपने वर्तमान कार्यकर्त्ताओं को नहीं बदलती

और अपनी मौजूदा नीति में उसकी श्रद्धा है, तबतक उसकी कुछ सुनिश्चित मर्यादायें हैं। यदि दूसरों की जानें लेकर, शासकों का खून बहा कर भारत की आजादी प्राप्त की जाती हो तो हम ऐसी आजादी नहीं चाहते। किन्तु उस आजादी की प्राप्ति के लिए राष्ट्र को हमें अगर कुर्बानी करने की आवश्यकता हुई तो आप देखेंगे कि हम भारत में अपने खून की गङ्गा बहा देने में भी संकोच न करेंगे—उस स्वाधीनता के लिए जो हमें अबतक नहीं मिली है, हम यह सब करने को तैयार हैं। जैसा कि आपने मुझे याद दिलाया मैं यह जानता हूँ कि मैं आपके बीच में अजनबी आदमी नहीं हूँ, बल्कि आपका एक सहयोगी हूँ। मैं जानता हूँ कि, आपकी ओर से मुझे यह पक्का विश्वास है कि, जहाँ तक आपका और उनका, जिनका आप प्रतिनिधित्व करते हैं, सम्बन्ध है, आप हमारा साथ देंगे और भारतवर्ष को एक बार फिर यह बतादेंगे कि आप आवश्यकता के समय काम आनेवाले मित्र हैं और इसलिए सच्चे मित्र हैं।

आपने जो मेरा बड़ा भारी स्वागत किया है, उसके लिए मैं आपको एक बार फिर धन्यवाद देता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि यह मेरा सम्मान नहीं है। आपने यह सम्मान उन सिद्धान्तों के प्रति प्रकट किया है जो मैं आशा करता हूँ मुझे और आप दोनों को ही प्रिय है, सम्भव है वे मुझसे भी आपको अधिक प्रिय हों। मुझे आशा है कि आपकी

प्रार्थनाओं और आपके सहयोग के बल पर मैं उन सिद्धान्तों से कभी विमुख न होऊँगा, जिनकी मैं आज घोषणा कर रहा हूँ।

[४]

अल्प संख्यक जातियाँ

प्रधान मन्त्री और मित्रो, बड़े खेद और उससे भी अधिक आत्मग्लानि के साथ मै, विभिन्न दलों के प्रतिनिधियो से खानगी बातचीत के द्वारा साम्प्रदायिक प्रश्न का एक सर्वमान्य निपटारा करने में सर्वथा असफल होने की घोषणा करता हूँ। मैं आपसे और अन्य सहयोगियों से एक सप्ताह के बहुमूल्य समय को नष्ट करने के लिए क्षमा माँगता हूँ। मुझे संतोष इसी बात में है कि जब मैंने इन बातचीतो का भार अपने ऊपर लिया था, तब मैं जानता था कि इसमें सफलता की अधिक आशा नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं नहीं समझता कि इस समस्या को हल करने का कोई प्रयत्न मैंने बाक़ी रक्खा हो।

परन्तु यह कहना कि बातचीत बिलकुल असफल रही—जोकि यह हमारे लिए बड़ी लज्जा की बात है—संपूर्ण सत्य नहीं है। असफलता के कारण तो इस भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के संगठन में अन्तर्हित हैं। इसमें से प्रायः सभी

उन दलों या मण्डलों के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं हैं जिनका प्रतिनिधि हमको समझा जाता है। हम सब यहाँ सरकार द्वारा नामजद होकर आये हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ वे सज्जन भी नहीं हैं, जिनकी उपस्थिति इस प्रश्न के निपटारे के लिए नितान्त आवश्यक है। आप मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कह दूँ कि लघुमति समिति के अधिवेशन के लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया है। इसमें वास्तविकता का अभाव इस कारण है कि अभी हम यह भी नहीं जानते कि हमे क्या मिलने वाला है। यदि हमको निश्चित रूप से मालूम हो जाता कि जो हम चाहते हैं वह हमे मिलनेवाला है तो हम ऐसी निकृष्ट खींचतान में उसे ठुकराने के पहले पचास वार आगा-पीछा सोचते जैसा कि हम तब करेंगे जब हमें यह कह दिया जाय कि उसका मिलना वर्तमान प्रतिनिधियों की साम्प्रदायिक उलझन को सर्वमान्य रूप से सुलझाने की योग्यता पर निर्भर है। साम्प्रदायिक प्रश्न का निपटारा तो स्वराज्य-विधान की रचना के वाद ही हो सकता है पहले नहीं। क्योंकि इस प्रश्न पर उत्पन्न हुआ हमारा मतभेद हमारी गुलामी के कारण अत्यन्त जटिल हो गया है, चाहे उसके कारण उत्पन्न न भी हुआ हो। मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि हमारा साम्प्रदायिक मतभेद रूपी बर्फ का पहाड़ स्वतन्त्रता रूपी सूर्य के ताप से पिघल जायगा।

इसलिए मैं यह प्रस्ताव करने का साहस करता हूँ कि

अल्प संख्यक समिति अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी जाय और विधान की मौलिक बातें जितनी जल्दी हो सकें उतनी जल्दी तय करली जायँ। इसी बीच में साम्प्रदायिक समस्या को उचित रूप से हल करने के लिए खानगी प्रयत्न जारी रहेगा और जारी रहना चाहिए, केवल इस बात का ध्यान रहे कि वह विधान-रचना के कार्य में बाधक न हो जाय। अत' इस प्रश्न से हटाकर हमें अपना ध्यान विधानरचना के मुख्य भाग पर केन्द्रीभूत करना चाहिए।

मैं समिति को यह भी बतला दूँ कि मेरी असफलता से इस प्रश्न का सर्वमान्य निपटारा करने की आशाओं का अन्त नहीं हो गया है। मेरी असफलता का अर्थ यह भी नहीं है कि मेरी हार हो गई। क्योंकि हार जैसा शब्द तो मेरे शब्दकोष में ही नहीं है। असफलता स्वीकार करने में मेरा तात्पर्य केवल यही है कि जिस विशेष प्रयत्न के लिए मैंने एक सप्ताह का अवकाश माँगा और जो आपने उदारतापूर्वक मुझे दिया उसमें मैं असफल रहा।

इस असफलता को मैं सफलता की सीढ़ी बनाने का प्रयास करूँगा और आप लोगो से भी ऐसा ही करने के लिए अनुरोध करूँगा। परन्तु यदि गोलमेज-परिषद् की समाप्ति तक भी निपटारे के हमारे सारे प्रयत्न असफल रहे तो मैं भावी विधान में एक ऐसी धारा जोड़ने की तजवीज पैदा करूँगा जिससे तमाम माँगो की जाँच करके अनिश्चित

बातों पर अपना अन्तिम फैसला देनेवाली एक क़ानूनी पंचायत की नियुक्ति हो जाय।

समिति को यह भी नहीं समझना चाहिए कि खानगी बात-चीत के लिए दिया गया समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ है। आपको यह जानकर हर्ष होगा कि बहुत से मित्र जो प्रतिनिधि नहीं हैं वे इस प्रश्न में दिलचस्पी ले रहे हैं। इन मित्रों में सर जियोफ्रे कारबेट का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने पंजाब के पुनर्विभाजन की योजना प्रस्तुत की है जो मेरे विचार में अध्ययन करने योग्य है, हालाँकि वह सबको मान्य नहीं है। मैंने सर जियोफ्रे से प्रार्थना की है कि वे अपनी योजना को विस्तारपूर्वक सब प्रतिनिधियों के सामने रक्खें। हमारे सिक्ख प्रतिनिधियों ने भी एक योजना बनाई है जो विचार करने योग्य है। सर ह्यूबर्ट कार ने भी कल रात को एक ऐसी नूतन योजना का निर्माण किया है जिसके अनुसार पंजाब में दो धारासभायें हों—छोटी मुसलमानों की माँगों को सन्तुष्ट करने के लिए और बड़ी जिससे सिक्खों की माँगों को सन्तुष्ट किया जा सके। यद्यपि मैं द्विखण्ड-धारासभा प्रणाली से सहमत नहीं हूँ, परन्तु सर ह्यूबर्ट की योजना ने मुझे काफी आकर्षित किया है। मैं इनसे भी प्रार्थना करूँगा कि वे उसको वैसे ही उत्साह के साथ बढ़ाते रहें जैसे उत्साह के साथ उन्होंने हमारी खानगी बातचीत में योग दिया है जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

अन्त में मैं महासभा के विचार आपके सामने स्पष्टतया रख देना आवश्यक समझता हूँ, क्योंकि मेरा इन मन्त्रणाओं में भाग लेन का एक मात्र कारण यही है कि मैं उसका प्रतिनिधि हूँ। यद्यपि लोगो को, खास कर इँगलैंड में, ऐसा प्रतीत न होता हो; परन्तु महासभा सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिनिधि होने का दावा करती है और निश्चय ही वह ऐसी मूक जनता की प्रतिनिधि है जिसमें अगणित अछूत, जो दलित होने की अपेक्षा दबाये हुए अधिक हैं—और उनसे भी अधिक हतभाग्य तथा उपेक्षित अवनत जातियाँ भी शामिल हैं।

महासभा की निश्चित नीति संक्षेप में यह है। मैं महासभा का प्रस्ताव आपको पढ़ कर सुनाता हूँ।

महासभा ने शुरू से ही विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपना आदर्श माना है और वह साम्प्रदायिक भेद भावों को हटाने में प्रयत्नशील रही है। लाहौर महासभा में पास किया हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव उसकी राष्ट्रीयता का सर्वोच्च परिचायक है।

"चूँकि नेहरू रिपोर्ट रद्द हो चुकी है, क़ौमी सवालों के बारे में महासभा की नीति की घोषणा करना अनावश्यक है, क्योंकि महासभा का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत में कौमी सवालों का हल सिर्फ विशुद्ध राष्ट्रीय ढंग से ही किया जा सकता है। लेकिन चूँकि ख़ास कर सिक्खों ने और साधारणतया मुसलमानों तथा दूसरी अल्पसंख्यक क़ौमो ने

नेहरू रिपोर्ट में प्रस्तावित क़ौमी सवालो के हल के प्रति असन्तोष व्यक्त किया है, यह महासभा सिक्खों, मुसलमानों और दूसरी अल्पसंख्यक कौमों को विश्वास दिलाती है कि इस सवाल का कोई भी ऐसा हल भावी शासन-विधान के लिए महासभा को तबतक मंजूर न होगा, जबतक कि उससे सम्बन्धित दलों को पूरा सन्तोष न होता हो।

"इसी कारण क़ौमी सवाल का क़ौमी हल पेश करने की जिम्मेदारी से महासभा बरी हो गई है। लेकिन राष्ट्र के इतिहास के इस नाजुक अवसर पर यह अनुभव किया गया कि कार्य-समिति को देश की स्वीकृति के लिए एक ऐसा हल सुझाना चाहिए जो देखने में क़ौमी होते हुए भी राष्ट्रीयता के अधिक-से-अधिक निकट हो और आम तौर पर उन सब क़ौमों को मंजूर हो, जिनका इससे सम्बन्ध है। इसलिए पूरी-पूरी और निर्बाध बहस के बाद कार्य-समिति ने सर्वसम्मति से नीचे लिखी योजना पास की है—

"१ (अ) विधान की मौलिक अधिकार से संबंधित धारा में उन-उन क़ौमों के लिए यह आश्वासन भी शामिल हो कि उनकी संस्कृति, भाषा, धर्मग्रन्थ, शिक्षा, पेशा, और धार्मिक व्यवहार तथा धार्मिक इनाम या जागीर वगैरा की रक्षा की जायगी।

" (ब) विधान में खास शर्तें शामिल करके उनके द्वारा व्यक्तिगत कानूनों की रक्षा की जायगी।

"(स) विभिन्न प्रान्तों में अल्प-संख्यक जातियों के राजनैतिक और दूसरे हक़ों की रक्षा करना संघ-शासन का दायित्व होगा, और यह काम उनके अधिकार-क्षेत्र की सीमा के अन्दर होगा।

"२. तमाम बालिग़ स्त्री-पुरुष मताधिकार के अधिकारी होंगे।

नोट—करांची महासभा के प्रस्ताव द्वारा कार्य समिति बालिग मताधिकार के लिए बँध चुकी है, अतः वह किसी दूसरे प्रकार के मताधिकार को स्वीकार नहीं कर सकती। लेकिन कुछ स्थानों में जो ग़लतफ़हमी फैली हुई है, उसे ध्यान में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है किसी भी हालत में मताधिकार एक समान होगा और इतना व्यापक होगा कि चुनाव की सूची में प्रत्येक क़ौम की आबादी का अनुपात उसमें स्पष्ट दिखाई पड़े।

"३. (अ) हिन्दुस्थान के भावी शासन-विधान में प्रतिनिधित्व का आधार संयुक्त निर्वाचन होगा।

"(ब) सिन्ध के हिन्दुओं, आसाम के मुसलमानों, और सरहद्दी सूबे तथा पञ्जाब के सिक्खों और किसी भी प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों के लिए, जहाँ उनकी संख्या आबादी का फी सैकड़ा २५ से कम है, संघीय और प्रांतीय धारासभाओं में आबादी के आधार पर स्थान सुरक्षित रक्खे जायँगे, और उन्हें अधिक स्थानों के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े होने का अधिकार होगा।

"४. निष्पक्ष लोकसेवा कमीशनों द्वारा नियुक्तियों की

जायँगी ये कमीशन सेवको की कम-से-कम योग्यता निश्चय करेंगे, और लोक-सेवा की कार्यक्षमता का तथा देश की सार्वजनिक नौकरियो में तमाम कौमो को समान अवसर और पर्याप्त भाग देने के सिद्धान्त का पूरा खयाल रक्खेंगे।

"५. संघीय और प्रान्तीय मन्त्री-मण्डल के निर्माण में अल्प-संख्यक जातियों के हित प्रचलित रूढ़ि के अनुसार मान्य होंगे।

"६. सरहद्दी सूबे और बलुचिस्तान में उसी प्रकार का शासन और व्यवस्था होगी, जैसी अन्य प्रान्तो में हो।

"७. सिन्ध को अलग प्रान्त बना दिया जाय, बशर्ते कि सिन्ध के लोग प्रथक् प्रान्त का आर्थिक भार वहन करने को तैयार हो।

"८. देश का भावी शासन-विधान संघीय होगा। शेष अधिकार संघीय इकाइयों (Federating Units) के हिस्से रहेंगे, बशर्ते कि अधिक परीक्षा करने पर यह हिंदुस्थान के अधिक-से-अधिक हित के प्रतिकूल सिद्ध न हो।

"कार्यसमिति ने उक्त योजना को विशुद्ध सम्प्रदायवाद और विशुद्ध राष्ट्रवाद के आधार पर किये गये प्रस्तावों के बीच समझौते के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए जहाँ एक ओर कार्यसमिति यह आशा रखती है कि सारा राष्ट्र इस योजना का समर्थन करेगा, तहाँ दूसरी ओर अतिवादी लोगों को, जो इसे क़बूल नहीं कर सकते, वह विश्वास दिलाती है कि समिति सहर्ष दूसरी किसी भी ऐसी योजना

को विना किसी हिचक के स्वीकार करेगी जैसी कि वह लाहौ-रवाले प्रस्ताव से बँधी हुई है जो तमाम सम्बन्धित दलों को स्वीकृत होगी।"

यह महासभा का प्रस्ताव है।

अब यदि राष्ट्रीय निपटारा असंभव हो और महासभा की योजना अस्वीकृत हो तो मुझे इस बात की स्वतंत्रता है कि मैं ऐसी अन्य न्ययोचित योजना से सहमत हो जाऊँ जो सब जातियो को मान्य हो। इस सम्बन्ध मे महासभा की नीति अधिक-से-अधिक समझौता शील है; और कम से कम जहाँ वह सहायता नहीं कर सकेगी वहाँ वह रोड़े भी नही अटकायगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आपसी पंचायत की किसी भी योजना का महासभा पूर्णतया समर्थन करेगी।

मेरे लिए ऐसा कहा गया प्रतीत होता है कि मैं अछूतो को धारासभाओं में स्थान देने के विरुद्ध हूँ। यह सत्य का गला घोंटना है। जो कुछ मैंने कहा है और जो मैं फिर दोहराता हूँ वह यह है कि मैं उनको विशेष प्रतिनिधित्व देने के पक्ष में नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि इससे उनका कोई भला नही हो सकता, उल्टा नुक़सान ही होगा। महा-सभा बालिग़ मताधिकार स्वीकार कर चुकी है, जिसमें करोड़ो अछूत मतदाता हो सकते हैं। यह असंभव मालूम होता है कि जब छूआछूत दूर होती जा रही है तब इन

मतदाताओं के नामज़द प्रतिनिधियों का दूसरे बहिष्कार कर देंगे। धारासभाओं में चुनाव से अधिक जिस बात की इनको आवश्यकता है वह है सामाजिक तथा धार्मिक अत्याचारों से रक्षा। कानून से भी अधिक शक्तिशाली रूढ़ियों ने उनको इतना नीचा गिरा दिया है कि प्रत्येक विचारवान् हिन्दू को उससे लज्जित हो कर प्रायश्चित करना चाहिए। अतएव मैं ऐसे कठोर क़ानून के पक्ष में हूँ जो मेरे इन देश-भाइयों पर उच्च कहलाने वाली जातियों द्वारा किये जानेवाले तमाम अत्याचारों को जुर्म क़रार दे। परमात्मा का धन्य-वाद है कि हिन्दुओं की भावनाओं में परिवर्तन हो रहा है और अल्प काल ही में छूआछूत हमारे पाप-पूर्ण भूत काल का एक अवशिष्ट चिन्ह मात्र रह जायगी।

[५]

संघ-न्यायालय

लार्ड चान्सलर तथा साथी प्रतिनिधिगण, मुझे इस विषय पर, जिसे इस वाद-विवाद ने बड़ा पारिभाषिक बना दिया है, बोलने में बहुत हिचकिचाहट मालूम हो रही है; परन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि मेरा आपके तथा जिस महासभा का मैं प्रतिनिधि हूँ उसके प्रति एक कर्त्तव्य है। मैं जानता हूँ कि महासभा की संघ-न्यायालय के प्रश्न पर एक निश्चित नीति है, जो मुझे भय है कि यहाँ अनेक प्रतिनिधियो को अप्रिय मालूम होगी। जो कुछ भी हो, परन्तु क्योंकि वह एक जिम्मेदार संस्था की नीति है इसलिए मेरे विचार में यह आवश्यक है कि उसे मैं आपके सामने रख दूँ।

मैं देखता हूँ कि इन वादविवादो का आधार यदि पूर्ण अविश्वास नहीं तो बहुत कुछ हमारा स्वयम् अपने ही में यह अविश्वास है कि राष्ट्रीय सरकार अपनी कार्यवाही निष्पक्ष रूप से नहीं कर सकेगी। साम्प्रदायिक उलझन भी इसे प्रभावित कर रही है। दूसरी ओर महासभा अपनी नीति का आधार श्रद्धा तथा इस विश्वास को मानती है कि

जब हमें अधिकार मिलेंगे तब हमें अपनी जिम्मेदारियों का भी ज्ञान हो जायगा और साम्प्रदायिक मतभेद अपने आप मिट जायगा। परन्तु यदि ऐसा न भी हो तो भी महासभा बड़े-से-बड़ा खतरा उठा लेगी क्योंकि ऐसे खतरे उठाये बिना हम वास्तविक उत्तरदायित्व को संभालने के योग्य न हो सकेंगे। जबतक हमारे दिमाग में यह भाव बना रहेगा कि हमें सलाह के लिए तथा नाजुक परिस्थिति में अपना काम चलाने के लिए किसी बाहरी शक्ति के सहारे रहना है तब-तक, मेरी राय में हमपर कोई जिम्मेदारी नहीं है।

यह बात भी उलझन में डालने वाली है कि हम बिना यह जाने कि हमारा ध्येय क्या है, इस विषय पर बहस करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि फौजें स्वराज्य सरकार के मात-हत नहीं रहें तो मैं एक राय दूँगा, परन्तु यदि वे हमारे ही अधिकार में रहे तो मेरी राय दूसरी होगी। मैं इस आधार पर चल रहा हूँ कि यदि हमें वास्तविक जिम्मेदारी मिलने-वाली हो तो फ़ौजों पर हमारा, अर्थात् सच पूछिए तो राष्ट्रीय, अधिकार रहेगा। डा० अम्बेडकर ने जो कठिनाई उपस्थित की है उसमें उनके साथ मेरी भी पूर्ण सहानुभूति है। सबसे ऊँची अदालत का फ़ैसला लेना बड़ी अच्छी बात है परन्तु यदि उस अदालत की आज्ञायें स्वयं उसीकी कचहरी के बाहर कोई वक़त न रखती हो, तो ऐसी अदालत पर सारा राष्ट्र और सारा संसार हँसेगा। फिर उस आज्ञा

का क्या होगा ? श्री जिन्ना ने जो कहा वह मेरी समझ में आ गया कि इस कार्य के लिए सैनिक शक्ति होगी, परन्तु उस हालत में आज्ञा का पालन करवानेवाला तो सम्राट् (Crown) होगा। तब मैं कहूँगा कि हाईकोर्ट अथवा संघ न्यायालय सम्राट् के ही अधीन रहे। मेरे विचार से यदि हमें जिम्मेदार बनना है तो सर्वोच्च न्यायालय को स्वराज्य सरकार के ही मातहत रहना पड़ेगा और उसकी आज्ञाओ को अमल में लाने का काम भी उसे ही—स्वराज्य सरकार को—ठीक करना पड़ेगा। डा. अम्बेडकर को जो भय है उससे मैं तो नहीं डरता हूँ, परन्तु मेरी समझ में उनकी आपत्ति अवश्य कुछ तथ्य रखती है; क्योंकि जो अदालत न्याय करे उसे यह भी भरोसा होना चाहिए कि जिनपर उसके फैसला का असर पड़ता है वे उनको मानेंगे। इसलिए मैं राय दूँगा कि न्यायाधीशो को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वे फैसलों के सम्बन्ध की बातो को बाकायदा चलाने के लिए नियम भी बना सकें। जरूर ही उनका पालन करवाना अदालत के हाथ में नहीं रहेगा बल्कि कार्यकारिणी विभाग के हाथों मे रहेगा; परन्तु कार्यकारिणी विभाग को इस अदालत के बनाये हुए नियमों के अनुसार ही कार्य करना होगा।

हम यह कल्पना करने लगे हैं कि यह विधान इस अदालत की रचना के सम्बन्ध की छोटी-से-छोटी बातें तक हमारे सामने रख देगा। मैं विनयपूर्वक इस विचार से

अपना पूर्ण मतभेद ज़ाहिर करता हूँ। मेरे विचार से यह विधान हमें संघ न्यायालय का खाका बना देगा और उसका अधिकार-क्षेत्र निश्चित कर देगा, परन्तु बाकी तमाम बातें संघ–सरकार के ऊपर छोड़ दी जाँयगी कि वह उनको पूरा कर ले। मैं इस बात को कभी ख़याल मे नहीं ला सकता कि यह विधान इन बातो को भी तय कर देगा कि न्यायाधीशों को कितने साल नौकरी करना है, आया उनको ७० वर्ष की अथवा ९५ अथवा ९० अथवा ६४ वर्ष की अवस्था पर इस्तीफा देना या रिटायर होना है; मेरी राय में तो यह बातें तो संघ-शासन ही निश्चित करेगा। हम प्रत्येक वाक्य के अख़ीर में सम्राट् (Crown) शब्द अवश्य ले आते हैं। मैं यह मानता हूँ कि महासभा के विचार से सम्राट् का कोई सवाल ही नहीं है। भारतवर्ष को तो पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करना है और यदि वह पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग करने लगे तो जो कोई भी सर्वोच्च सत्ता होगी वही न्यायाधीशो की नियुक्ति तथा आज जो सम्राट् के अधिकार की बातें हैं, उन सबकी ज़िम्मेवार होगी।

महासभा का यह मौलिक सिद्धान्त है कि विधान का रूप चाहे जैसा हो भारत में हमारी अपनी प्रीवी–कौंसिल होगी। प्रीवी–कौंसिल, वास्तव में सबसे अधिक महत्व की बातो में, निर्धन लोगों की रक्षा तभी कर सकेगी, जब उसके फाटक दीनातिदीन जनों के लिए भी खुले रहेंगे। और मेरे

विचार में यदि यहाँ की—इंग्लैण्ड की—प्रीवी-कौंसिल महत्वपूर्ण विषयों में हमारी क़िस्मत का फ़ैसला करने वाली हो तो ऐसा होना असम्भव है। इस सम्बन्ध में भी मैं अपने यहाँ के न्यायाधीशों की बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सर्वथा निष्पक्ष फैसला देने की योग्यता में पूर्ण विश्वास रखने की सलाह दूँगा। मै जानता हूँ कि हम बड़ी जोखिम उठा रहे हैं। यहाँ की प्रीवी-कौंसिल एक प्राचीन संस्था है जिसकी बड़ी प्रतिष्ठा तथा बड़ा मान है परन्तु इस प्रीवी-कौंसिल के प्रति अपने आदर को स्वीकार करते हुए भी मैं कभी यह विश्वास नहीं कर सकता कि हम अपनी निजी ऐसी प्रीवी-कौंसिल न बना सकेंगे जिसके गौरव को सारा संसार स्वीकार करे। इंग्लैण्ड को बड़ी सुचारु संस्थाओं का अभिमान हो सकता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम भी उन संस्थाओं में बंधे रहे। यदि हमें इंग्लैण्ड से कुछ सीखना है त यही कि हम स्वयं भी ऐसी संस्थायें स्थापित कर सकें, वरना जिस राष्ट्र के हम प्रतिनिधि हैं उसकी उन्नति को कोई आशा नहीं है। इसलिए मैं आप सबसे प्रार्थना करूँगा कि इस समय हम अपने में पूर्ण विश्वास रक्खें। हमारा प्रारम्भ भले ही छोटा हो, परन्तु यदि हमारे हृदयों में सचाई और ईमानदारी के साथ फ़ैसला देने की शक्ति है, तो फिर कोई परवाह नहीं यदि हमारे देश में इंग्लैण्ड के न्यायाधीशों जैसी न्यायपरम्परा—जिसका उनको संसार में अभिमान है—न हो।

विस्तृत अधिकार

इस प्रकार मेरी राय में इस संघ-न्यायालय को अधिक-से-अधिक अधिकार होने चाहिएँ और वह केवल उन्हीं मामलों का फ़ैसला न करे जिनका संघ-क़ानून (Federal-Laws) से सम्बन्ध है। संघ-कानून जरूर रहेंगे परन्तु उसको इतना अधिकार होना चाहिए कि भारत के किसी भी भाग में होनेवाले मामलों पर वह फ़ैसले दे सके।

अब यह प्रश्न है कि देशी नरेशों की प्रजा की क्या स्थिति रहेगी और उनका क्या होगा। देशी नरेश जो कुछ कहें उसको ध्यान में रखते हुए मैं बड़े सम्मान तथा बड़ी हिचकिचाहट के साथ सलाह दूँगा कि यदि इस कानफ़रेंस का कुछ फल निकले तो कोई बात ऐसी होनी चाहिए जो सारे भारत के लिए तथा सारे भारतवासियों के लिए एकसी हो, फिर चाहे वे रियासतों के रहनेवाले हो या भारत के अन्य भागों के। यदि हम सबमें कोई समान बात है तो अवश्य ही सर्वोच्च-न्यायालय (Supreme-Court) को सबके समान अधिकारों की रक्षा करनी होगी। मैं नहीं कह सकता कि ये अधिकार क्या हो सकते हैं और क्या नहीं हो सकते। चूँकि देशी नरेश स्वयं अपनी श्रेणी के ही प्रतिनिधि बनकर नहीं आये हैं, बल्कि उन्होंने अपनी प्रजा के प्रतिनिधित्व की भी बड़ी भारी जिम्मेदारी अपने सिर पर ले रक्खी है, इसलिए मैं विनम्र तथा हार्दिक प्रार्थना करूँगा कि उनको

स्वयं ही कोई ऐसी योजना बना देनी चाहिए जिससे उनकी प्रजा को यह अनुभव हो कि यद्यपि इस परिषद् में उनका कोई प्रतिनिधि नहीं है, तो भी उनके विचार इन माननीय नरेशों के ही द्वारा भली प्रकार प्रकट किये जायँगे।

तनख्वाहें

जहाँतक तनख्वाहों का सवाल है, आप लोग शायद हँसेंगे, परन्तु महासभा का जो एक ग़रीब राष्ट्र की प्रतिनिधि है, विश्वास है कि, इस सम्बन्ध में हमारा—धन के लिहाज से एक दरिद्र राष्ट्र का—वर्तमान धनकुबेर इंग्लैण्ड से स्पर्द्धा करना असम्भव है। भारतवर्ष, जिसकी औसत आय ३ पैंस प्रति दिन है, वैसी तनख्वाहों को बर्दाश्त नहीं कर सकता जो यहाँ दी जाती हैं। मैं समझता हूँ कि यदि हमें भारत में स्वाधीनतापूर्वक राज्य करना है, तो इस बात को भूल जाना पड़ेगा। जबतक अंग्रेजी तलवार वहाँ मौजूद है, तबतक भले ही इन दीन मनुष्यों को निचोड़ कर १०,००० रु० या ५,००० रु० या २०,००० रु० मासिक तनख्वाहें दी जा सकें। मैं नहीं समझता कि मेरा देश इतना गिर गया है जो, करोड़ों भारतीयों के जैसा जीवन बिताते हुए भी भारत की सचाई के साथ सेवा करनेवाले जन, पर्याप्त संख्या में उत्पन्न न कर सके। मैं इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि क़ानूनी योग्यता को ईमानदार रहने के लिए भारी क़ीमत देने की आवश्यकता है।

इसके लिए मैं श्री मोतीलाल नेहरू, सी॰ आर॰ दास, मनमोहन घोष, बदरुद्दीन तय्यबजी इत्यादि की याद आपको दिलाता हूँ, कि जिन्होंने अपनी क़ानूनी लियाक़त बिलकुल मुफ्त बाँटी और अपने देश की बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप शायद मुझे ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसाय में बड़ी लम्बी-लम्बी फ़ीस लेते थे। मैं इस तर्क को इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोष के सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि अधिक रुपया होने की वजह से इन लोगों ने भारत को आवश्यकता पड़ने पर अपनी योग्यता उदारता पूर्वक दी हो। उसका उनकी आराम तथा विलास से रहने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने उनको बड़े संतोष से दीनतापूर्वक जीवन निर्वाह करते देखा है। इस समय चाहे जो स्थिति हो, मैं अब भी आपको कई ऐसे प्रसिद्ध वकील बतला सकता हूँ जो, यदि राष्ट्रीय हितों के लिए आगे न बढ़े होते, तो भारत के विभिन्न भागों में हाई कोर्ट के न्यायाधीशों के आसन पर बैठे हुए होते। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब हम अपने क़ानून स्वयं बनाने लगेंगे तो हम देशभक्ति के भावो से प्रेरित होकर तथा भारत के करोड़ों निवासियों की दीन अवस्था को ध्यान में रखते हुए ऐसा करेंगे।

मैं एक बात और कह कर समाप्त करूँगा। यह ध्यान

में रखते हुए चाहे जो नाम आप उसे दें, महा सभा के विचार से यह संघ-न्यायालय या सर्वोच्च-न्यायालय ऐसी ऊँची अदालत का स्थान ग्रहण करेगा, जिसके ऊपर भारत का कोई निवासी न जा सके, मेरी राय में उसका अधिकार क्षेत्र भी अपरिमित होगा। संघीय बातो से जहाँ तक संबंध है उसका अधिकार-क्षेत्र इतना ही विस्तृत होगा जितने से देशी नरेश सहमत हों। परन्तु मैं यह खयाल कभी नहीं कर सकता कि हमारे यहाँ दो सर्वोच्च-न्यायालय रहें; एक तो केवल संघ-कानून की बातों के लिए और दूसरा अन्य सब बातों के लिए जो संघ-शासन या संघ-सरकार के अंतर्गत न आती हों।

इस समय जैसी बातें हो रही हैं उससे मालूम होता है कि संघ-सरकार कम-से-कम विषयो से ताल्लुक़ रक्खेगी और अधिक महत्वपूर्ण बातें संघ-शासन से बाहर ही रहेंगी। इन संघ की बातों पर यदि यह सर्वोच्च-न्यायालय फैसला नहीं देगा तो और कौन देगा? इसलिए इस सर्वोच्च-न्यायालय का दोहरा अधिकार होगा और यदि आवश्यकता हो तो तिहरा अधिकार होगा। जितनी अधिक शक्ति हम इस संघ-न्यायालय या सर्वोच्च-न्यायालय को देंगे उतने ही अधिक विश्वास का संचार हम संसार में तथा स्वयं अपने राष्ट्र में कर सकेंगे।

मुझे खेद है कि मैंने परिषद् के समय की यह बहुमूल्य

घड़ियाँ ली हैं, परन्तु मैंने अनुभव किया कि संघ-न्यायालय के प्रश्न पर बोलने की अनिच्छा रखते हुए भी मैं उन विचारों को आपके सामने रख दूँ जो महासभावादी वर्षों से रखते चले आये हैं और जिनको हम भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक यदि फैला सकें तो फैलाना चाहते हैं। मैं जानता हूँ कि मुझे किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। लगभग सारे प्रसिद्ध वकील मेरे ख़िलाफ़ हैं और जहाँतक इस न्यायालय की तनख्वाहों तथा इसके अधिकार का सवाल है वहाँतक शायद नरेश भी मेरे विरोधी हैं। परंतु यदि मैं संघ-न्यायालय सम्बन्धी महासभा के तथा अपने मेरे विचारों को जिनका हम ज़ोरों से प्रतिपादन करते हैं आपके सामने न रक्खूँ तो अपने कर्त्तव्य से गिरने का दोषी होऊँगा।

[६]

जनतंत्र की हत्या

केन्द्रीय आधार

प्रधान मंत्री, तथा प्रतिनिधि बन्धुओ, मैं अत्यधिक संकोच और लज्जा के साथ अल्पसंख्यक जातियों के प्रश्न की चर्चा में भाग ले रहा हूँ। कुछ अल्प-संख्यक जातियों की ओर से प्रतिनिधियों के पास भेजे हुए और आज सुबह ही मिले हुए आवेदन-पत्र (Memorandum) को मैं उचित ध्यान और एकाग्रता से नहीं पढ़ सका हूँ। इसके पहले कि उक्त आवेदन-पत्र के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहूँ, मैं अत्यन्त आदर और सम्मान के साथ, आपकी आज्ञा से, आपके इस समिति के सामने पेश किये गये इस विचार के साथ कि जातिगत प्रश्न को हल करने की अस-मर्थता के कारण विधान-रचना के कार्य की प्रगति रुक रही है और ऐसा कोई विधान बनाये जाने के पहले इस प्रश्न का हल हो जाना एक अनिवार्य शर्त है, अपना मत-भेद प्रकट करना चाहता हूँ। इस समिति की बैठक के आरम्भ में ही मैंने कह दिया था, कि मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। उसके बाद अबतक मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है,

उससे मेरा वह विचार और दृढ़ हो गया है, और आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करेंगे कि गत वर्ष इस कठिनाई के सम्बन्ध में आपने जो ज़ोर दिया और इस वर्ष फिर उसे दुहराया, उसीका यह कारण है कि विभिन्न जातियों को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी माँग को रखने का उत्तेजन मिला। यदि उन्होंने इसके विपरीत किया होता, तो वह मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध होता। सबने यही सोचा कि अपनी माँगें चाहे जैसी हो, उनपर पूरा-पूरा आग्रह करने का यही समय है, और मैं इस बात को फिर दुहराने का साहस करता हूँ कि मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपके इस प्रश्न पर दिये गये ज़ोर के ही कारण इसका उद्देश्य विफल हो गया है। यह उत्तेजन मिलने के कारण ही हम किसी समझौते पर न आ सके। इसलिए सर चिमनलाल सेतलवाड़ के इस विचार के साथ मैं पूर्णतः सहमत हूँ कि यही प्रश्न कोई आधाररूप नहीं है, यही प्रश्न मध्यबिन्दु नहीं है, प्रत्युत मध्यबिन्दु तो है विधान-रचना।

मुझे यह पूरा विश्वास है कि आपने इस गलमेज़ परिषद् को तथा हम लोगों को, यहाँ ६,००० मील दूर से अपना घर और कामकाज छुड़ाकर, साम्प्रदायिक अथवा जातिगत प्रश्न हल करने के लिए नहीं बुलाया है बल्कि आपने हमें एकत्र किया—आपने जानबूझ कर यह घोषित किया कि हम लोग यहाँ निमंत्रित किये गये हैं, विधान-रचना की

क्रिया में भाग लेने के लिए और आपने यह भी घोषित किया है कि आपके आतिथ्यशील देश को छोड़ने के पहले हम इस बात का निश्चय हो जाय कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान और प्रतिष्ठायुक्त ढाँचा तैयार कर चुके हैं और अब उसपर केवल 'हाउस आफ कामन्स' और 'हाउस आफ लार्ड्स' की सम्मति मिलना ही शेष रह गया है।

किन्तु इस समय एक सर्वथा जुदी परिस्थिति का हमें सामना करना पड़ रहा है और वह यह कि चूँकि हम किसी जातिगत समझौते पर नहीं आ सके, इसलिए विधान-रचना का कुछ काम नहीं होगा, और अन्तिम उपाय की तरह बाकी रंग-आमेजी करने के लिए विधान और उससे उद्भावित सब बातों के सम्बन्ध में सम्राट्-सरकार की नीति को आप घोषित कर देंगे। मैं यह महसूस किये बिना नहीं रह सकता कि जो परिषद् इतने होहल्ले के साथ और इतने अधिक लोगों के मन और हृदय में आशा उत्पन्न करके की गई थी, उसका यह दुःखद अन्त होगा।

इस आवेदन पत्र× पर आते हुए, सर ह्यूबर्टकार ने मुझे जो धन्यवाद दिया है वह मैं स्वीकार करता हूँ। उनका

× छोटी अल्पसंख्यक जातियों और मुसलमानों में परस्पर स्वीकृत कथित योजना। सर ह्यूबर्ट कार ने अपने भाषण में, गाँधीजी

यह कहना ठीक है कि इस बोझ को अपने कंधों पर उठाते समय मैंने जो शब्द कहे थे यदि वे न कहे होते और किसी प्रकार का समझौता करने मे मैं सर्वथा असफल न हुआ होता, तो वे अन्य छोटी जातियों के साथ मिलकर, इस समिति के विचार के लिए और अन्त में सम्राट्-सरकार की स्वीकृति के लिए जो अत्यन्त सराहनीय योजना पेश कर सके हैं, वह न कर सकते।

सर ह्यूबर्ट कार तथा उनके साथियों को इससे वस्तुतः जो सन्तोष हुआ है, वह मैं उनसे न छीनूँगा, किन्तु मेरे विचार में उन्होंने जो कुछ किया है, वह ऐसा ही है जैसा कि मुर्दे के पास बैठना और उसकी लाश की चीरफाड़ करने का भारी पराक्रम करना।

भारत की सबसे बड़ी और प्रधान राजनैतिक संस्था के प्रतिनिधि की हैसियत से सम्राट-सरकार से, उन मित्रों से जो अपने नाम के सामने दी गई छोटी-छोटी जातियों के प्रतिनिधि बनना चाहते हैं, और अवश्य ही सारे संसार से, मैं बिना किसी हिचकिचाहट के यह कह देना चाहता हूँ कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह योजना उत्तरदायित्व-

---

को उक्त प्रश्न के निपटारे की असफलता के लिए कटाक्षपूर्वक धन्यवाद दिया था, क्योंकि उनके (सर ह्यूबर्ट के) मत से उनकी इस असफलता के परिणाम स्वरूप ही छोटी अल्प-संख्यक जातियाँ आपस में मिल सकीं।

पूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य प्राप्ति के लिए नहीं है, प्रत्युत नौकरशाही की सत्ता में भाग लेने के लिए बनाई गई है।

यदि यही इरादा हो—और सारे आवेदन-पत्र में यही इरादा व्याप्त है—तो मैं उनकी सफलता चाहता हूँ, परन्तु राष्ट्रीय महासभा उससे साफ़ अलग हो जाती है। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे कि खुली हवा में उगने वाला स्वतन्त्रता और स्वराज्य का वृक्ष कभी उग न सकता हो, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा महासभा चाहे जितने वर्ष जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।

मुझे यह सुनकर आश्चर्य होता है कि सर ह्यूवर्ट कार हमें बताते हैं कि उन्होंने जो योजना तैयार की है, वह केवल कुछ ही दिनों के लिए, अस्थायी अथवा कामचलाऊ, होने के कारण उससे हमारे राष्ट्र-हित को कोई हानि न होगी, प्रत्युत दस वर्ष के अन्त में हम सब एक-दूसरे से मिलते और आपस में आलिंगन करते दिखाई देंगे। मेरा राजनैतिक अनुभव इससे सर्वथा विरुद्ध बात सिखाता है। यदि इस उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का, जब भी कभी वह आवे, शुभ मुहूर्त में आरम्भ करना हो तो, जैसा कि इस योजना से होता है, उसकी चीरफाड़ न होनी चाहिए; जो ऐसी चीरफाड़ है, जिसे कोई राष्ट्रीय सरकार सह नहीं सकती।

पर इस योजना की चौंका देने वाली बात तो यह है और प्रधान मंत्री महोदय, मुझे आश्चर्य है कि स्वयं आपने

सदस्यों में वितरित करदी गई है। मैं साहस पूर्वक कह सकता हूँ कि इस सम्बन्ध में मैंने जितनी योजनाएँ देखी हैं, उन सबमें वह अत्यधिक व्यावहारिक योजना है। किन्तु मैं इसमें भूल भी कर सकता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस मेज के सामने बैठे हुए अपनी-अपनी जाति के प्रतिनिधियों को यह योजना पसन्द नहीं है; किन्तु भारत में इन्हीं जातियों के प्रतिनिधि उसे स्वीकार कर चुके हैं। यह केवल एक ही दिमाग़ की उपज नहीं, प्रत्युत एक समिति की कृति है, जिसमें कई महत्त्वपूर्ण दलों के प्रतिनिधि थे। इसलिए महासभा की ओर से आपके पास यह योजना है; किन्तु महासभा ने यह भी सूचना की है कि इस प्रश्न के निर्णय के लिए एक निष्पक्ष पंचायत की आवश्यकता है। पंचायत के द्वारा सारे संसार में अदालत ने अपने मतभेद मिटाये हैं, और महासभा भी पंचायती अदालत के किसी भी निर्णय को स्वीकार करने के लिए हमेशा तैयार है। मैंने स्वयं यह सूचित करने का साहस किया है कि सरकार एक न्याय-मण्डल नियुक्त करे जो इस मामले की जाँच कर उस पर अपना निर्णय दे। परन्तु इन बातों में से किसीको कोई भी बात स्वीकृत न हो, और यदि इसी शर्त पर विधान रचना होती हो, तो मैं कहूँगा कि सर ह्यूबर्ट कार तथा अन्य सदस्यों द्वारा पेश की गई इस योजना को स्वीकार करने की अपेक्षा इस उत्तरदायी शासन नामधारी

शासन से दूर रहना ही हमारे लिए कहीं अधिक अच्छा है।

मैंने पहले जो कहा है, उसीको फिर दुहराता हूँ कि महा-सभा कोई भी ऐसी योजना जो कि हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों को स्वीकृत होगी स्वीकृत करने के लिए सदैव तैयार रहेगी, किन्तु अन्य अल्प-संख्यक जातियों के विशेष प्रतिनिधित्व अथवा विशेष निर्वाचन मण्डल की योजना का वह कभी समर्थन न करेगी। मौलिक अधिकार और नागरिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी विशेष धाराओं अथवा संरक्षणों को महासभा सदैव स्वीकृत करेगी। निर्वाचकों की सूची में दाखिल होकर सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल से मत मांगने का सबके लिए खुला अधिकार होगा। मेरी नम्र सम्मति के अनुसार सर ह्यूबर्ट कार की योजना उत्तरदायित्व शासन एवम् राष्ट्रीयता के मूल पर ही आघात करनेवाली है। यदि भारत को इस प्रकार काट-काट कर जुदे किये हुए अनेक वर्गों के प्रतिनिधि मिलनेवाले हों, तो उस भारत की क्या दशा होगी यह भगवान् ही जाने। वह और केवल वही अंग्रेज सम्पूर्ण भारत की सेवा कर सकेगा जो केवल अंग्रेजों द्वारा नहीं, प्रत्युत सर्वमान्य निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित होगा। स्वयं इस विचार से ही प्रकट होता है कि उत्तरदायी शासन को सदैव राष्ट्रीय भावना के—आबादी के ८५ प्रति शत किसानों के—हितविरोधी इस वर्ग के साथ लड़ना होगा। मैं तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि हम

उत्तरदायी शासन की स्थापना करना चाहते हों, और यदि हम वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेवाले हों, तो मैं यह सूचित करने का साहस करता हूँ कि इन कथित विशेष वर्गों के प्रत्येक व्यक्ति का यह गौरवपूर्ण अधिकार और कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह सर्वमान्य निर्वाचक की सम्मति और निर्वाचन के खुले द्वार से व्यवस्थापिका में प्रवेश करे। आप जानते हैं कि महासभा वालिग मताधिकार से बंधी हुई है और इस वालिग़ मताधिकार के कारण सब के लिए निर्वाचक सूची में दाखिल होने का मार्ग खुला रहेगा। कोई भी व्यक्ति इससे अधिक माँग नहीं सकता।

अछूतों का मामला

अन्य अल्प-संख्यक जातियों के दावे को मैं समझ सकता हूँ; किन्तु अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए 'सबसे अधिक निर्दय घाव' है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिए क़ायम रहनेवाला है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए भी मैं अछूतों के वास्तविक हित को न बेचूँगा। मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूँ। यहाँ मैं केवल महासभा की ओर से ही नहीं बोलता, प्रत्युत स्वयं अपनी ओर से भी बोलता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। और मैं

भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा कर के अछूतों से कहूँगा कि अस्पृश्यता जो कि उनका नहीं प्रत्युत कट्टर एवम् रूढ़िवादी हिन्दुओ का कलङ्क है, दूर करने का उपाय प्रथक् निर्वाचक मण्डल अथवा व्यवस्थापिका सभाओ में विशेष रक्षित स्थान नहीं है। इस समिति को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू समाज-सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो कि अस्पृश्यता के इस कलङ्क को धोने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरो में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदी जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज सदा के लिए अंग्रेज रह सकते हैं। किन्तु क्या अछूत भी सदैव के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू धर्म डूब जाय। इसलिए डा. अम्बेडकर के अछूतों को ऊँचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा उनकी योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहूँगा, कि उन्होंने जो कुछ किया है अत्यन्त भूल अथवा भ्रम के वश मे होकर किया है और कदाचित् उन्हें जो कटु अनुभव हुए होंगे, उनके कारण उनकी विवेक शक्ति पर परदा पड़ गया है। मुझे यह कहना पड़ता है, इसका मुझे दुःख है; किन्तु यदि मैं यह न कहूँ तो अछूतों का हित जो मेरे लिए प्रणों के समान

है, उसके प्रति मैं सच्चा न होऊँगा। सारे संसार के राज्य के बदले भी मैं उनके अधिकारों को न छोड़ूँगा। मैं अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूँ, जब मैं कहता हूँ कि डा.अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतों के नाम पर बोलना चाहते हैं, तब उनका यह दावा उचित नहीं है;इससे हिन्दू-धर्म में जो विभाग हो जायँगे वह मैं जरा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता। अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायँ तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं; मैं वह सह लूँगा, किन्तु प्रत्येक गाँव में यदि हिन्दुओं के दो भाग हो जायँ तो हिन्दू-समाज की जो दशा होगी वह मुझसे सही न जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं, वे भारत को नहीं पहचानते और हिन्दू-समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूँ कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि मैं अकेला होऊँ तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूँगा।

[७]

सेना

लार्ड चान्सलर महोदय तथा प्रतिनिधि बन्धुओ, मैं जानता हूँ कि इस सबसे अधिक महत्त्व के प्रश्न पर महासभा का मत प्रकट करने मे मेरे कन्धों पर बड़ी जबदस्त जिम्मेदारी है। मैं इस अवसर पर बोलने के लिए खड़ा हुआ हूँ, क्योकि अब तो मैं इसमें आ फँसा हूँ। मैं नहीं जानता कि इस चर्चा या बहस की रिपोर्ट तैयार होगी अथवा नहीं। मैं यह भी नहीं जानता कि ये बहसें एकदम बन्द हो जायँगी अथवा आगे बढ़ाई जायँगी। मैं तो यहाँ, यदि आवश्यकता हो तो शीतकाल बिताने के इरादे से आया था। इसलिए समय का तो कोई प्रश्न नहीं, यदि संयोग से मित्रता-पूर्ण बातचीत और विचार-विनिमय से महासभा का उद्देश्य पूर्ण होता हो। मैं यहाँ जानबूझ कर इसी इरादे से भेजा गया हूँ कि चाहे इस परिषद् मे खुली चर्चा करके, अथवा मन्त्रियो एवम् यहाँ के लोकमत पर प्रभाव रखनेवाले सार्वजनिक व्यक्तियो तथा भारत के जीवन-मरण के प्रश्न पर दिलचस्पी रखनेवाले सबके साथ खानगी बात-चीत करके सम्मानयुक्त समझौते

का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूँ। इसलिए महासभा के उस नीति से बँधे होने के कारण, जो कि आप सबको विदित है, मेरा यह फ़र्ज़ है कि मैं समझौते का एक भी उपाय शेष न छोड़ूँ। महासभा अपने लक्ष्य पर जल्दी-से-जल्दी पहुँचने के लिए तुली हुई है और इन सब विषयों पर अपने, निश्चित मत रखती है। अधिक प्रस्तुत हक़ीक़त कहूँ तो उत्तरदायी शासन से आनेवाली सब प्रकार की जिम्मेवारियों को उठाने के लिए वह आज भी तैयार है, अपने-आपको उसके लिए आज योग्य समझती है।

यह स्थिति होने के कारण मैंने ख़याल किया कि इस अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर यथासम्भव नम्रतापूर्वक और संक्षेप से संक्षेप में महासभा का मत प्रदर्शित किये बिना मैं इसकी चर्चा समाप्त होने नहीं दे सकता।

उत्तरदायित्व का भार

जैसा कि आप सब जानते हैं महासभा की मांग यह है कि भारत को पूरा-पूरा उत्तरदायित्व सौंप दिया जाय। इसका अर्थ यह है, और वह महासभा के प्रस्ताव में स्पष्ट कर दिया गया है कि रक्षण अर्थात् सेना और बाह्य सम्बन्धों पर उसका पूरा अधिकार होना चाहिए; किन्तु उसमें समझौतों की भी गुंजायश है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि इस महत्वपूर्ण विषय में उत्तरदायित्व न माँग कर भी हम उत्तरदायी शासन पा जायंगे, यह ख़याल कर

हमें अपनेको और संसार को धोखा न देना चाहिए। मेरा खयाल है कि जिस राष्ट्र का अपने रक्षण-सैन्य पर और अपनी बाह्यनीति अथवा बाह्य-सम्बन्धों पर अधिकार न हो, वह मुश्किल से ही उत्तरदायी राष्ट्र कहा जा सकता है। यदि राष्ट्र के रक्षण पर—सेना पर—किसी बाहर के व्यक्ति का, फिर चाहे वह कितना ही उसका मित्र क्यों न हो, अंकुश हो; तो वह राष्ट्र निश्चय ही उत्तरदायित्व पूर्ण शासित राष्ट्र नहीं कहा जा सकता। यह बात हमारे अंग्रेज शिक्षकों ने अगणित बार हमें सिखाई है, और इसलिए कुछ अंग्रेज मित्रों ने जब यह सुना कि हमें उत्तरदायी शासन तो मिलेगा, किन्तु हमारी अपनी रक्षण-सेना पर हमारा अधिकार न होगा, अथवा हम उसकी मांग न करेंगे, तो इसपर उन्होंने मुझे ताना भी दिया।

इसलिए मैं यहाँ अत्यन्त आदरपूर्वक महासभा की ओर से सेना पर, रक्षण-सैन्य पर और बाह्य सम्बन्धों पर पूर्ण अधिकार का दावा करने के लिए आया हूँ। मैंने इस में बाह्य सम्बन्ध का भी समावेश कर दिया है, जिससे कि इस विषय पर जब सर तेजबहादुर सप्रू बोलें, तो मुझे न बोलना पड़े।

हम इस निर्णय पर पूरा-पूरा विचार करके पहुँचे हैं। उत्तरदायित्व हाथ में लेते समय यदि हमें यह अधिकार न मिले, क्योंकि हम इसके लिए योग्य नहीं समझे गये तो मैं

उस समय की कल्पना नहीं कर सकता, जब क्योंकि हम अन्य विषयों में उत्तरदायित्व का उपभोग कर रहे हैं, अकस्मात हम अपने रक्षण-सैन्य पर अधिकार रखने के योग्य हो जायँगे।

देश पर काबू रखनेवाली सेना

मैं चाहता हूँ कि कुछ क्षण देकर यह समिति इस बात को समझ ले कि इस समय इस सेना का क्या अर्थ है। मेरे मतानुसार यह सेना, फिर चाहे वह भारतीय हो अथवा अंग्रेजी, वस्तुतः देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। इस सेना के सैनिक सिक्ख हों, या गोरखे, पठान हों या मद्रासी अथवा राजपूत; चाहे जो कोई भी हों, जबतक वे विदेशी सरकार द्वारा नियन्त्रित सेना में है, मेरे लिए वे सब विदेशी हैं। मैं उनसे बोल नहीं सकता। बहुत सैनिक मेरे पास चोरी से छिपके आये हैं, और मुझसे उन्हे बोलने तक में डर लगता था, क्योकि उन्हें इस बात का भय था कि कहीं कोई उनकी रिपोर्ट न कर दे। जहाँ वे रक्खे जाते हैं, साधारणतः हमारा वहाँ जा सकना सम्भव नहीं है। उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि वे हमें अपना देश-भाई न समझें। जो संसार के किसी देश में नहीं है, वह यहाँ है, और वह यह है कि उनके सैनिकों के और सर्वसाधारण जनता के बीच कोई सम्पर्क नहीं है। भारतीय जीवन के प्रत्येक भाग के संसर्ग में आने का,

और जितनो के साथ सम्भव हो सके उन सबसे परिचय करने का प्रयत्न करनेवाले व्यक्ति की हैसियत से मैं इस समिति के सामने अपनी साक्षी देता हूँ, यह मेरे अकेले का ही निजी अनुभव नही है, प्रत्युत सैकड़ों और हज़ारों महासभावादियों का यह अनुभव है, कि इन सैनिकों और हमारे बीच एक पूरी दीवाल खड़ी कर दी गई है।

इसलिए मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि इस उत्तरदायित्व को एकदम अपने कन्धों पर लेना और और इस सेना पर, अंग्रेज़ सैनिकों की तो बात ही क्या, अधिकार रखना हमारे लिए बहुत बड़ी बात है। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह अभागी और दुःखद स्थिति हमारे शासकों ने हमारे लिए पैदा की है। इतना होने पर भी हमें यह ज़िम्मेदारी ले लेनी चाहिए।

इसके बाद सेना का अंग्रेजी विभाग है। अंग्रेजी सेना का उद्देश्य क्या है? प्रत्येक भारतीय बालक जानता है कि अंग्रेजी और साथ ही भारतीय सेना यहाँ पर अंग्रेज़ों के स्वार्थों की रक्षा के लिए, और विदेशियो के हमलो को रोकने अथवा उनका मुकाबला करने के लिए रक्खी गई हैं। मुझे इसके लिए खेद है कि मुझे यह शब्द कहने पड़ते हैं, किन्तु मैंने निरन्तर यही बात देखी है, और इसका अनुभव किया है, और सत्य को मैंने जैसा देखा है और माना है वैसा प्रकट न करूँ तो अपने अंग्रेज़ मित्रों के प्रति

भी अन्याय होगा । तीसरे, इस सेना का उद्देश्य है वर्तमान सरकार के विरुद्ध बग़ावत को दबाना ।

इस सेना के ये मुख्य काम हैं, और इसलिए इस सम्बन्ध में अंग्रेजों का जो दृष्टिकोण है, उससे मुझे कुछ आश्चर्य नहीं होता । यदि मैं अंग्रेज होता और मेरी भी दूसरे देशों पर शासन करने की महत्वाकांक्षा होती, तो मैं भी ठीक ऐसा ही करता । मैं भारतीयों को पकड़ कर सैनिकों की तरह शिक्षा देता, उन्हें अपना वफ़ादार होना सिखाता, इतना वफ़ादार कि मेरा हुक्म होते ही मेरे बताये किसी भी व्यक्ति पर गोली चला दें । जिन लोगों ने जलियाँवाला बाग़ में लोगों पर गोलियाँ चलाई वे हमारे ही देशवासी नहीं तो और कौन थे ?

अंग्रेजी सेना के भारत में रक्खे जाने का यही उद्देश्य है कि, वह इन विभिन्न भारतीय सैनिकों के बीच अच्छी तरह समतौलपना रखती है । वह अंग्रेज अधिकारियों और अंग्रेजों के प्राणों की रक्षा करती है जो कि उसे करनी ही चाहिए । यदि मैं यह तत्त्व स्वीकार कर लूँ कि भारत पर अंग्रेजों का अधिकार करना उचित था, और कोई परवा नहीं स्थिति कैसी ही परिवर्तित क्यों न हो, आज भी उसपर अंग्रेजों का अपना अधिकार क़ायम रखना और आगे के लिए भी जारी रहने देना उचित है, तो फिर मुझे कोई शिकायत रहे ही नहीं ।

आवश्यक शर्त

इस प्रकार जिस प्रश्न को सर तेज बहादुर सप्रू और इसी तरह पण्डित मदनमोहन मालवीय ने टाल दिया, उसका उत्तर देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। उक्त दोन ने यह कहा है कि विशेषज्ञ न होने के कारण वे यह नहीं बता सकते कि किस हद तक यह सेना घटाई जा सकती है या घटा दी जानी चाहिए। किन्तु मेरे सामने ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। मुझे यह बताने में कोई दिक्कत नहीं है कि इस सेना का क्या होना चाहिए। मैं यह बात जोर के साथ कहूँगा कि विदेशी शासन से विरासत में मिले हुए भयङ्कर विघ्नों के साथ भारत के शासन को चलाने का उत्तरदायित्व मैं अपने कंधों पर ले सकूँ, इसके पूर्व यदि यह सेना मेरे अधिकार में न आवे तो इस सारी सेना को तोड़ अथवा बिखेर देना चाहिए।

इसलिए यह मेरी मौलिक स्थिति होने के कारण मैं कहना चाहता हूँ कि यदि आप ब्रिटिश मन्त्रिगण तथा ब्रिटिश जनता सचमुच भारत के द्वारा भला चाहते हो; यदि आप हमें अभी सत्ता सौंपने के लिए तैयार हो तो आप इस शर्त को आवश्यक एवम् अनिवार्य समझें कि सेना पर हमारा पूरा-पूरा अधिकार होना चाहिए।

पोषित स्वप्न

किन्तु मैं आपसे कह चुका हूँ कि इसमें जो खतरा है,

वह मैं जानता हूँ । मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि यह सेना मेरा आदेश नहीं मानेंगी । मैं जानता हूँ कि अंग्रेज सेनाधिपति मेरी आज्ञा का पालन न करेंगे; उसी तरह सिक्ख और अभिमान राजपूत, कोई भी मेरा हुक्म न बजावेंगे । किन्तु फिर भी मैं अपेक्षा करता हूँ कि ब्रिटिश जनता की सद्भावना से मैं अपने आदेश एवम् आज्ञा का पालन करा सकूँगा । यह अधिकार एवम् अङ्कुश बदलने के समय वे इन्हीं सैनिकों को नया पाठ पढ़ाने के लिए वहाँ मौजूद रहेंगे और उन्हें बतायँगे कि इन आदेशों का पालन करोगे तो अन्त में तो तुम अपने ही देशभाइयों की सेवा करोगे । अंग्रेज सैनिकों से भी यह कहा जा सकेगा कि "अब तुम यहाँ अंग्रेजों के स्वार्थ और उनके प्राण बचाने के लिए नहीं, वरन् अपने ही देश भाइयों की सेवा करते हो इस तरह भारत की विदेशी हमलों से तथा उसी तरह आन्तरिक-विग्रह से रक्षा करने के लिए हो ।" यह मेरा स्वप्न है । मैं जानता हूँ कि मेरा वह स्वप्न सच्चा न होगा । मैं ऐसा अनुभव करता हूँ; मेरे सामने इसका प्रमाण है; मेरी बुद्धि मुझे गवाही देती है कि आज और इस परिषद की चर्चा के परिणाम स्वरूप मेरा यह स्वप्न सच्चा न होगा । किन्तु फिर भी मैं उस स्वप्न को पोषित करता रहूँगा । अपनी जिन्दगी-भर इस स्वप्न को पोषित करना मुझे पसन्द होगा । किन्तु यहाँ का वातावरण मैं देखकर जानता हूँ कि सम्भवतया

में ब्रिटिश जनता में इस विचार एवम् आदर्श का संचार नहीं कर सकता कि इस बात को उन्हें भी पोषित करते रहना चाहिए। इसी तरह मैं लार्ड इर्विन की इच्छाओं का अर्थ करूँगा। इसी बात में ग्रेट-ब्रिटेन को अपना गौरव मानना चाहिए, यह उसका कर्तव्य होना चाहिए कि इस समय वह हमें अपनी रक्षा करने के रहस्य बता दें। हमारे पर कतर देने के बाद अब यह उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हमारे पर लौटा दे, जिससे कि हम उसी तरह उड़ सकें जिस तरह की वह उड़ता है। यही वास्तव मे मेरी महत्वकाँक्षा है, और इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि सेना पर मुझे अधिकार न मिलेगा तो मैं अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करता रहूँगा। मैं अपने-आपको यह धोखा देने से इनकार करता हूँ कि यद्यपि मैं अपनी सेना का नियन्त्रण नहीं कर सकता, फिर भी मैं उत्तरदायी शासन चलाने के लिए तैयार हूँ।

पुराना इतिहास

आखिर भारत कोई ऐसा देश तो है नहीं, जो कभी यह न जानता हो कि अपनी रक्षा किस तरह करनी चाहिए। इसके लिए उसके पास पूरी सामग्री मौजूद है। मुसलमानों को विदेशी हमले का कोई डर है ही नहीं। सिक्ख इस बात को ही मानने से इनकार कर देंगे कि उन्हें कोई जीत सकता है। और गुरखे में ज्योंही राष्ट्र-भावनाओं का विकास हो जायगा, त्यो ही वह कह उठेगा "मैं अकेला ही भारत की

रक्षा कर सकूँगा।" फिर हमारे यहाँ राजपूत हैं, जो ग्रीस की एक छोटी-सी थर्मोपोली नहीं, हजारों थर्मोपोली के जन्मदाता कहे जाते हैं। यह बात हमें अंग्रेज इतिहासज्ञ कर्नेल टॉड ने बताई है। उन्होंने हमें बताया है कि राजपूताने की प्रत्येक घाटी एक थर्मोपोली है। क्या इन लोगों को रक्षण-कला सिखाने की आवश्यकता है? मैं मानता हूँ कि यदि मैं अपने कन्धों पर उत्तरदायित्व उठाऊँ तो ये सब लोग उसमें मेरा हाथ बटावेंगे। मैं यहाँ यह देख कर तीव्र वेदना अनुभव कर रहा हूँ कि हम लोग अभी तक साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा न कर सके; किन्तु इस प्रश्न का निपटारा जब कभी भी होगा, उसमें यह तो पूर्वनिर्धारित होना ही चाहिए कि हम एक दूसरे पर विश्वास रक्खेंगे। चाहे शासन में प्राधान्य मुसलमानों का हो, चाहे सिक्खों का, चाहे हिन्दुओं का; वे मुसलमान, सिक्ख, अथवा हिन्दू की तरह नहीं, प्रत्युत एक भारतीय की तरह शासन करेंगे। यदि हममें एक दूसरे के प्रति अविश्वास रहेगा, और हमें एक दूसरे के हाथ कट मरना न होगा; तो इसके लिए हमें अंग्रेजों की जरूरत रहेगी। किन्तु फिर उस दशा में हमें उत्तरदायी शासन की बातचीत न करनी चाहिए।

कम-से-कम मैं तो इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकता कि सेना पर अधिकार हुए बिना ही उत्तरदायी शासन मिल गया है, मुझे अपने हृदय की नीची-से-नीची

तह से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमें उत्तरदायी शासन लेना हो और महासभा उत्तरदायी शासन चाहती है,—उसका अर्थात् महासभा का अपने पर, जनसमूह पर और उन सब बहादुर सैनिक जातियो पर विश्वास है, इतना ही नहीं अंग्रेजो पर भी उसका यह विश्वास है कि किसी दिन वे अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे और हमें पूरा अधिकार सौंप देंगे—तो हमें अंग्रेजों में भारत के प्रति वह प्रेम फूँक देना चाहिए, जिससे कि वह भारत अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति प्राप्त कर सके। यदि अंग्रेज़-जनता का यह खयाल हो कि ऐसा होने के लिए अभी एक शताब्दि की ज़रूरत है, तो इस शताब्दि भर महासभा जंगलो में भटकती रहेगी, और उसे उस भयङ्कर अग्नि परीक्षा में होकर गुज़रना होगा, आपदाओं के तूफान और ग़लतफ़हमियों के बवण्डर का मुक़ाबला करना होगा और— यदि आवश्यक हुआ और ईश्वर की इच्छा हुई तो,—गोलियों की बौछार भी सहनी होगी। यदि ऐसा हुआ तो इसका कारण यह होगा कि हम एक-दूसरे पर विश्वास नहीं रख सकते और अंग्रेज़ो और भारतीयों के दृष्टिकोण जुदा-जुदा हैं।

संरक्षण

यह मेरी मौलिक स्थिति है। मैं तफ़सील में नहीं जाना चाहता। मुझमें जितनी शक्ति थी, उतने ज़ोर से मैंने यह बात रख दी है। किन्तु यदि यह बात स्वीकार कर ली जाय तो

किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति को पसन्द आ जाने लायक एक के वाद एक संरक्षण वनाकर पेश करने जैसी सूझ मुझ में है, केवल यह वात दोनों पक्षों को स्वीकृत होनी चाहिए कि ये संरक्षण भारत के हितसाधक होंगे। किन्तु मैं तो इससे भी आगे जाना और लार्ड इर्विन के इस कथन की पुष्टि करना चाहता हूँ—यद्यपि समझौते में संरक्षणों के भारत के हितसाधक होने की ही वात है—कि वे भारत और इंग्लैंड के परस्पर हित साधक होने चाहिएँ। मैं एक भी ऐसे संरक्षण की कल्पना नहीं कर सकता जो केवल भारत के हित में होगा। कोई भी ऐसा संरक्षण नहीं है, जो कि साथ ही ब्रिटेन का भी हितसाधक न हो, क्योंकि हम साझेदारी, इच्छित और सर्वथा वरावरी के दर्जे की साझेदारी की कल्पना करते हैं।

जो कारण मैंने आल सेना पर पूरा अधिकार दिये जाने के लिए पेश किये हैं, वे ही कारण वाह्य-सम्वन्ध पर अधिकार प्राप्त करने के सम्वन्ध में हैं।

वाह्य-सम्बन्ध

वाह्य सम्वन्धों का वास्तविक अर्थ क्या है, इस सम्वन्ध में मेरी पूरी जानकारी न होने के कारण और इस सम्वन्ध में गोलमेज परिषद् की इन रिपोर्टों में वताई गई वातों का मुझे ज्ञान न होने से वाहरी मामले और वैदेशिक सम्वन्ध का क्या अर्थ है, इस विषय का प्रथम पाठ पढ़ाने के लिए

मैंने अपने मित्र श्री आयंगर और सर तेजबहादुर सप्रू से पूछा। उनके उत्तर मेरे पास मौजूद हैं। उनका कहना है कि इन शब्दो का अर्थ, पड़ौसी राज्यों, देशी राज्यों, अन्तर्राष्ट्रीय बातों में दूसरे राष्ट्रो और इङ्गलैण्ड के उपनिवेशों के साथ का सम्बन्ध होता है। यदि बाह्य सम्बन्धो का यही अर्थ हो तो मैं समझता हूँ कि इस बोझ को उठाने और इस सम्बन्ध मे अपना कर्त्तव्य पालन करने में हम पूरे समर्थ हैं। निश्चय ही हम अपने ही सम्बन्धियों के साथ अपने ही पड़ौसियों और हमारे ही देशबन्धु भारतीय नरेशो के साथ सुलह की शर्तें तै कर सकेंगे, अपने पड़ौसी अफ़गानों के साथ और समुद्र पार जापानियों के साथ प्रगाढ़ मित्रता पैदा कर सकते हैं, और निश्चय ही उपनिवेशो के साथ भी संधि कर सकते हैं। यदि उपनिवेश अपने यहाँ हमारे देशवासियों को पूर्ण आत्म-सम्मान के साथ न रहने देंगे, तो हम उनसे निपट लेंगे।

सम्भव है कि मैं अपनी मूर्खता के कारण ऐसा कह रहा हूँ, किन्तु आप लोगों को समझ लेना चाहिए कि महासभा में मेरे जैसे हजारों और लाखों मूर्ख पुरुष और स्त्रियाँ हैं और मैं उन्हीं की ओर से आदरपूर्वक यह दावा पेश करता हूँ, और फिर कह देना चाहता हूँ कि जिन संरक्षणों की हमने कल्पना की है, उन्हें स्वीकार कर हम अपने वचनों का अक्षरशः पालन करेंगे।

पण्डित मदनमोहन मालवीय ने संरक्षणों की रूपरेखा बता दी है। मैं उनके कथन के अधिकांश से सर्वथा सहमत हूँ; किन्तु कुछ यही एकमात्र संरक्षण नहीं है। यदि अंग्रेज और भारतवासी मिल कर विचार करेंगे और मन में बिना किसी प्रकार का पाप रक्खे एक ही दिशा में प्रयाण करेंगे तो मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहता हूँ कि कदचित हम ऐसे संरक्षण तैयार कर सकेंगे, जो कि भारत और इङ्गलैण्ड दोनो के लिए समानतः सम्मानपूर्ण होंगे, और जो प्रत्येक अंग्रेज के प्राणो की और भारत द्वारा स्वीकृत उनके प्रत्येक हितों की सुरक्षितता के लिए संरक्षणरूप होंगे। लार्ड चान्सलर महोदय, इससे अधिक आगे मैं जा नहीं सकता। इस सभा का समय लेने के लिए मैं सहस्रवार क्षमा मागता हूँ; किन्तु दिन प्रति दिन यहाँ बैठने, और इन चर्चाओं का सफल परिणाम किस प्रकार निकल सके इसपर अहोरात्रि चिन्तन करते हुए मेरे हृदय में जो भाव उठ रहा है, उसकी आप कल्पना कर सकते हैं। जो भावना मुझे प्रेरित कर रही है वह आप समझ सकते हैं। मेरी यह भावना अंग्रेजों के प्रति पूर्णतः सद्भाव की और अपने देशवासियों के प्रति पूर्णतः सेवाभाव की है।

[८]

व्यापारिक भेदभाव

लार्ड चान्सलर महाशय और मित्रो, श्री ग्रेंथोल ने जो अत्यन्त सौम्य वक्तव्य दिया है, उसके लिए मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ, और मैं चाहता हूँ कि यदि इस सुन्दर वक्तव्य में उन्होंने दो भावनाओं का समावेश कर उसे न बिगाड़ने के लिए कोई तरीका निकाला होता तो अच्छा होता। उनकी प्रदर्शित एक भावना का अर्थ यह है कि यूरोपियन अथवा अंग्रेज जो माँग करते हैं, उसका कारण यह है कि उन्होंने भारत को कई लाभ पहुँचाये हैं। मैं चाहता हूँ कि यदि वे इस राय को टाल सके होते तो अच्छा होता। किन्तु उसके प्रकट हो चुकने के बाद उसपर, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने उसका जो शिष्टतापूर्ण प्रत्युत्तर दिया और जैसा कि हमने सुना, अब सर फ़िरोज सेठना ने जिस प्रत्युत्तर का समर्थन किया, लार्ड रीडिंग ने जो आश्चर्य प्रकट किया है, उसकी ज़रा भी आवश्यकता न थी। मैं यह भी चाहता हूँ कि जिस बड़ी संस्था के वे प्रतिनिधि हैं, उसकी ओर से उन्होंने उक्त वक्तव्य में जो धकमी दी है, उसे भी यदि वे टाल गये होते तो अच्छा

होता। उन्होंने कहा कि अंग्रेज भारत को राष्ट्रीय माँगों का समर्थन इसी शर्त पर करेंगे कि भारतीय राष्ट्रवादी उनकी बताई हुई अंग्रेजों की माँगों को स्वीकार कर लें। कुछ ही दिन पहले हम इनकी ओर से की गई पृथक् निर्वाचक-मंडल की माँग सुन चुके हैं, उसमें प्रकट होनेवाली पृथकता की मनोवृत्ति, और पृथक् होना चाहनेवालों के जिस समूह के विषय में मुझे उस दिन जो दु:खपूर्वक बोलना पड़ा था, उसमें सम्मिलित हो जाने की अंग्रेजों की इच्छा भी इसमें शामिल है। पिछली परिषद् में स्वीकृत प्रस्ताव के अध्ययन का मैंने प्रयत्न किया है। यद्यपि आप उससे परिचित हैं, फिर भी मैं उसे पुनः पढ़ देना चाहता हूँ, क्योंकि उसके संबंध में मुझे कुछ बातें कहनी होंगी। प्रस्ताव यह है—"अंग्रेज व्यापारी वर्ग के कहने से सबने यह सिद्धान्त सामान्यतः स्वीकार किया है कि भारत में व्यापार करनेवाले अंग्रेजी व्यापारी वर्ग, फ़र्म्स और कम्पनियों के अधिकार और भारत में पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार में कोई भेदभाव न होना चाहिए।"

प्रस्ताव के शेष भाग के पढ़ने की मुझे कुछ आवश्यकता नहीं। सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के प्रति अत्यन्त आदरभाव रखते हुए भी मुझे अत्यन्त दुःख के साथ इस अमर्यादित प्रस्ताव के साथ मतभेद प्रदर्शित करना पड़ता है। इसलिए कल, जब सर तेजबहादुर सप्रू ने तुरन्त ही यह बात स्वीकार कर ली कि यह प्रस्ताव

सन्दिग्ध है और उसमें सुधार की गुञ्जायश है, तो मुझे प्रसन्नता हुई। यदि आप इस प्रस्ताव का ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे तो आपको प्रतीत होगा कि उसका रूप कितना व्यापक है। भारत में व्यापार करनेवाले अंग्रेज व्यापारी वर्ग, फ़र्म्स और कम्पनियों के अधिकार और भारत में पैदा हुए प्रजाजन के अधिकार में कोई भेदभाव न होगा। यदि मैं इसको ठीक समझा हूँ तो यह एक भयानक वस्तु है, और कम-से-कम मैं तो इस तरह के प्रस्ताव से, भारत की भावी सरकार की तो बात ही क्या, महासभा तक को नहीं बाँध सकता।

इसमें किसी तरह की भी योग्यता अथवा मर्यादा का नामोनिशान भी नहीं है। अंग्रेज व्यापारीवर्ग के बिलकुल वही अधिकार क़ायम रहेंगे, जो कि भारत में पैदा हुए प्रजाजन के होंगे; इसलिए मानों जातीय भेदभाव, अथवा वैसी कोई बात हो न होगी, इस सम्बन्ध में अंग्रेज व्यापारी वर्ग भारतीय प्रजाजन के समान ही पूरे अधिकार भोगेंगे। मैं अपने पूरे बल के साथ कहना चहता हूँ कि मैं तो इस सूत्र तक को सम्मति न दूँगा कि भारत में उत्पन्न सभी प्रजाजनों के अधिकार अविचल अथवा समान होंगे। उसका कारण मैं आपको अभी बताता हूँ।

समानता का प्रश्न

मैं समझता हूँ, आप इस बात को तुरन्त स्वीकार कर

लेंगे कि मौजूदा सरकार ने जिन बातों की ओर दुर्लक्ष्य किया है, स्थिति में समानता लाने के लिए, भारत की भावी सरकार को उनके प्रति सतत ध्यान रखना ही पड़ेगा; अर्थात्, जिन लोगों को प्रकृति अथवा स्वयं सरकार की कृपा से धन-वैभव अथवा अन्य साधन-सुविधायें मिली हुई हैं, उनके मुकाबले में उसे भूखे मरते भारतीयों के प्रति सदैव पक्षपात करना होगा। कदाचित् भावी सरकार को अपने मज़दूरों को मुफ्त में देने के लिए मकान बनवा देना आवश्यक प्रतीत हो, उस समय सम्भव है भारत के धनिक लोग यह कहें कि 'यद्यपि हमें इस प्रकार के घरों की आवश्यकता नहीं है फिर भी यदि सरकार अपने मजदूरों के लिए घर बनवाती है, तो हमें भी सहायता व साधन दे। लेकिन सरकार के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं। उस अवस्था में वह अवश्य ही मजदूरों के लिए पक्षपात करेगी। उस समय उक्त प्रस्ताव में निर्धारित सूत्र के अनुसार धनिक लोग कहेंगे कि उनके विरुद्ध भेदभाव किया गया है।

इसलिए मैं साहसपूर्वक सूचित करता हूँ कि, जब कि हम, इस परिषद् में, जिस हद तक सम्राट की सरकार भारत के भावी विधान की रचना में हमारी सहायता स्वीकार करती है उस हद तक सहायता पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं, इस अमर्यादित सूत्र का स्वीकार किया जा सकना सम्भव हो नहीं सकता।

भेदभाव की योजना

किन्तु यह कहने के बाद मैं अंग्रेज व्यापारियों और यूरोपियन फर्म्स की इस उचित मांग से सर्वथा सहमत हूँ कि उनके साथ किसी प्रकार का जातीय पक्षपात न होना चाहिए। मैं, जिसे कि दक्षिण अफ्रीका की महान् सरकार के साथ, उसके रंगभेद और भारतीयों के प्रति भेदभाव मूलक कानून के विरोध में २० वर्ष तक लड़ना पड़ा था, भारत में अभी मौजूद अथवा भविष्य में आना चाहने वाले अंग्रेज मित्रों के साथ उसी प्रकार के भेदभाव किये जाने की बात का कभी समर्थन नहीं कर सकता। मैं यह बात महासभा की ओर से भी कह रहा हूँ। महासभा का भी यही मत है।

इसलिए उक्त सूत्र के बजाय, मैं कुछ ऐसा सूत्र सुझाता हूँ, जैसे के लिए कि मुझे वर्षों तक जनरल स्मट्स के साथ लड़ने का सुख और सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। उसमें परिवर्तन हो सकता है; किन्तु मै तो उसे केवल इस समिति के और विशेषतः अंग्रेज मित्रों के विचार के लिए यहाँ पेश करता हूँ। वह इस प्रकार है—"स्वराज्य में भारत में उत्पन्न किसी भी नागरिक पर जो प्रतिबन्ध न लगाया गया होगा, वैसा कोई भी प्रतिबन्ध, भारत में कानून के अनुसार रहने वाले अथवा प्रवेश करनेवाले किसी भी व्यक्ति पर केवल—मैं 'केवल' शब्द पर ज़ोर देता हूँ

जाति, रंग अथवा धर्म के कारण न लगाया जायगा।"

मैं समझता हूँ कि यह सब के लिए संतोषप्रद सूत्र है। कोई भी सरकार इससे आगे जा नहीं सकती। मैं इस सूत्र के गर्भित अर्थ पर संक्षेप में अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ। और मुझे खेद कि गत वर्ष के सूत्र से लार्ड रीडिंग ने जो अर्थ निकाला था, अथवा निकालना चाहा था, उससे यह गर्भित अर्थ भिन्न है। इस सूत्र से एक भी अंग्रेज़ तो क्या यूरोप के किसी भी निवासी के साथ, उसके अंग्रेज़ अथवा यूरोपियन होने के कारण कोई भेदभाव न होगा। मैं यहाँ अंग्रेज़ अथवा अन्य यूरोपियन अथवा अमेरिकन या जापानी के बीच कोई भेदभाव नहीं करता। ब्रिटिश उपनिवेशों ने रंग और जातिभेद के निश्चित आधार पर प्रतिबन्धक क़ानून बना कर मेरी नम्र-सम्मति में अपनी क़ानून की पुस्तक को जिस प्रकार दूषित किया है, मैं उसका अनुकरण न करूँगा।

मुझे यह विचार प्रिय है कि स्वतन्त्र भारत समस्त संसार को एक दूसरे ही तरह का पाठ पढ़ावेगा, एक दूसरे ही प्रकार का उदाहरण उसके सामने रक्खेगा। मैं यह कभी न चाहूँगा कि भारत सर्वथा एकाकी जीवन व्यतीत करे और इस प्रकार अपने चारों ओर गढ़ कोट खड़े करके अपनी सीमा में किसी को प्रवेश अथवा व्यापार ही न करने दे। किन्तु इतना कहने के बाद जैसा

कि मैं पहले कह चुका हूँ, 'स्थिति में समानता लाने के लिए' की जाने योग्य कई बातें मेरे मन में हैं। मुझे भय है कि पूँजीपतियों, ज़मींदारों, ऊंची कही जानेवाली जातियों और अन्त में वैज्ञानिक विधि से अंग्रेज शासकों ने दीन, दलित, पतितों को जिस कीचड़ में फँसा दिया है, उससे उन्हें निकालने के लिए भारत को आगामी अनेक वर्षों तक क़ानून बनाने में संलग्न रहना पड़ेगा। यदि हमें इन लोगों को कीचड़ में से निकालना हो, तो अपना घर व्यवस्थित करने के लिए, इन लोगों का विचार पहले करना तथा जिस बोझ के नीचे वे कुचले जा रहे हैं, उससे उन्हें छुड़ाना भी राष्ट्रीय सरकार का कर्त्तव्य होगा। जो ज़मींदार, धनिक अथवा विशेष अधिकार-भोगी लोग—चाहे वे अंग्रेज हों या भारतीय—यदि यह देखें कि उनके साथ भेद-भावपूर्ण बरताव होता है, तो मैं उनके प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट करूँगा; किन्तु मुझसे सहायता हो सकती होगी, तो भी, मैं सहायता न करूँगा, क्योंकि मैं तो इस क्रिया में उनकी सहायता चाहूँगा, और बिना उनकी सहायता के इन लोगों को कीचड़ में से बाहर न निकाल सकूँगा।

हरिजन—अछूत

यदि आप चाहें तो अन्त्यजों की दशा पर नज़र डालिए और देखिए कि यदि क़ानून उनका सहायक

बनकर उनके लिए कई कोसों का प्रदेश अलग कर दें, तो उनकी क्या स्थिति हो जाती है। आज उनके पास ज़रा भी ज़मीन नहीं है। आज वे उच्च जाति के कहे जाने-वाले लोगों की दया पर, और मुझे कहने दीजिए कि, सरकार की दया पर जीवित हैं। वे आज एक जगह से दूसरी जगह खदेड़े जा सकते हैं, और इसकी न तो वे शिकायत कर सकते है, न क़ानून की सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए व्यवस्थापिका सभा का पहिला काम यह देखना होगा, कि वह किस हद तक इनकी स्थिति समान करने के लिए, इन लोगों को मुक्त-हस्त से सहायतार्थ रक़म दे।

सहायता की ये रक़में किनकी जेबों में से आयँगी? ईश्वर की जेबों में से नहीं। सरकार के लिए ईश्वर आकाश से रुपयों की वर्षा न करेगा। स्वभावतः यह रकम धनिक लोगों के पास से ही आयगी, जिनमें अंग्रेज़ भी शामिल हैं। क्या वे कहेंगे कि यह भेदभाव है? वे देख सकेंगे कि उनके साथ का यह भेदभाव उनके यूरोपियन होने के कारण नहीं है, बल्कि इसलिए है कि उनके पास पैसा है, और दूसरे के पास पैसा नहीं है। इसलिए यह धनिकों और ग़रीबोंकी लड़ाई होगी; और यदि इसी बात की आशंका हो, और यदि ये सब वर्ग करोड़ों मूक प्राणियों के सिर पर बन्दूक तान कर कहें कि जबतक तुम हमारी मिल्कियत और हमारे अधिकार की अक्षुण्णता का निश्चित वचन नहीं

दे देते, तबतक तुम्हें स्वराज्य न मिलेगा, तो मुझे भय है कि राष्ट्रीय सरकार का जन्म ही न हो सकेगा।

मैं समझता हूँ कि, महासभा का ध्येय और मैंने जो सूत्र बताया है, उसका गर्भित अर्थ क्या है, इसका मैंने काफ़ी परिचय करा दिया है। वे यह बात कभी न पावेंगे कि क्योंकि वे अंग्रेज यूरोपियन, जापानी अथवा किसी अन्य जाति के हैं, इसलिए उनके साथ भेदभाव किया जाता है। जिन कारणों से उनके साथ भेदभाव किया जायगा, वे ही कारण भारत में उत्पन्न प्रजाजनों के साथ भी लागू होंगे।

<u>दूसरा सूत्र</u>

मेरे पास जल्दी में तैयार किया हुआ और एक सूत्र है; जल्दी में तैयार किया हुआ, इसलिए क्योंकि मैंने यहीं पर लार्ड रीडिंग और सर तेजबहादुर सप्रू का भाषण सुनते-सुनते ही तैयार किया है।

यह दूसरा सूत्र जो मेरे पास है, वह वर्तमान अधिकारों के सम्बन्ध में है—

"किसी भी न्यायार्जित अधिकार मे, जो आम तौर पर राष्ट्र के सर्वोच्च हितों के विरुद्ध न होगा, ऐसे अधिकारों को लागू होने वाले कानून के सिवा और किसी तरह हस्तक्षेप न किया जायगा।"

आज अंग्रेजी सरकार के सिर पर कर्ज़ देना है, उसके

आगामी सरकार के अपने सिर पर लेने सम्बन्धी महासभा के प्रस्ताव में जो बात आप देखते हैं, निश्चय ही वह मेरे मन में भी है। जिस प्रकार हमारी यह माँग है कि इस कर्ज़ को अपने सिर पर लेने के पूर्व निष्पत्त न्याय-मण्डल द्वारा उसकी जाँच होनी चाहिए, उसी तरह आवश्यकता होने पर वर्त्तमान अधिकारों की नियमानुसार जाँच किये जाने की भी छुट्टी होनी चाहिए। इसलिए प्रश्न क़र्ज़ से इनकारी का नहीं है, वरन् उसकी जाँच हो जाने के बाद स्वीकार करने का ही है। यहाँ हममें कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्होंने, यूरोपियन लोग जो विशेपाधिकार तथा एकाधिकार भोग रहे हैं, उनका अध्ययन किया है। किन्तु अकेले यूरोपियनों की बात नहीं है। भारतीयों में भी ऐसे लोग हैं—मेरे ध्यान में निश्चय ही अनेक ऐसे भारतीय हैं— जो आज जिस भूमि पर क़ब्ज़ा किये हुए हैं वह उन्होंने प्रजा की किसी सेवा के बदले में नहीं पाई है; मैं यह भी नहीं कह सकता कि सरकार की सेवा के एवज़ में वह उन्हें मिली है,क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि उससे सरकार को कुछ लाभ पहुँचा है, वरन वह उन्हें दी गई है किसी अधिकारी की सेवा के बदले में। और यदि आप मुझे कहें कि सरकार इन रिआयतों और विशेषाधिकारो की जाँच न करेगी, तो मैं आप से फिर कहूँगा कि अकिंचनों की ओर से, दलितों की ओर से शासनतन्त्र चलाना असम्भव हो जायगा। इसलिए आप

देखेंगे कि इसमें यूरोपियनों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। दूसरा सूत्र भी यूरोपियनों को उतना ही लागू पड़ता है, जितना भारतीयों को; या यों कहिए जितना सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास और सर फ़िरोज सेठना को लागू पड़ता है। यदि इन्होंने सरकारी अधिकारियों की सेवा करके कुछ लाभ उठाया होगा, मीलों अथवा कोसों जमीन प्राप्त की होगी, तो, यदि शासन की लगाम मेरे हाथ में होगी तो मैं तुरन्त ही वह उनके पास से छुड़ा लूँगा। वे भारतीय हैं इसलिए मैं उन्हें छोड़ न दूँगा; और उतनी ही तत्परता से मैं सर ह्यूबर्ट कार अथवा श्री ब्रेन्थॉल के पास से भी धरवा लूँगा, फिर चाहे वे कितने ही प्रशंसा योग्य क्यों न हो और मेरे प्रति कितना ही मित्र-भाव क्यों न रखते हो। यह विश्वास मैं आपको दिला देना चाहता हूँ कि क़ानून किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात न करेगा। यह विश्वास दिलाने के बाद, इससे आगे मैं जा नहीं सकता, सलिए 'न्यायार्जित' शब्द का वास्तविक गर्भित अर्थ यह है, कि प्रत्येक अधिकार अथवा हित निष्कलङ्क और सीजर की स्त्री के समान सन्देह से परे होना चाहिए, और इससे जब ये सारी बातें सरकार की नजर में आवें तो हम इनकी जाँच की अपेक्षा रक्खेंगे।

इसके बाद 'राष्ट्र के सर्वोच्च हितों के विरुद्ध न हो' ये शब्द आते हैं। मेरे विचार में कई एकाधिकार ऐसे हैं जो

निस्सन्देह न्यायतः प्राप्त हैं, किन्तु जो राष्ट्र के सर्वोच्च हितों को हानि पहुँचा कर पैदा किये गये हैं। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ, इससे आपको कुछ मनोरंजन होगा, किन्तु उसके सम्बन्ध में कुछ पक्षापक्षी के लिए अवकाश नहीं। इस नयी दिल्ली नामधारी सफ़ेद हाथी को लीजिए। इस पर करोड़ों रुपये ख़र्च हुए हैं। मान लीजिए कि भावी सरकार इस निर्णय पर आवे कि यह सफ़ेद हाथी अपने पास है, इसलिए इसका कुछ उपयोग होना चाहिए; कल्पना कीजिए कि पुरानी दिल्ली में प्लेग अथवा हैज़ा फैला है और हमें ग़रीबों के लिए अस्पतालों की ज़रूरत है। इस स्थिति में हम क्या करें? क्या आप समझते हैं कि राष्ट्रीय सरकार अस्पताल या ऐसी चीज़ बनवा सकेगी? नहीं ऐसी कोई बात न होगी। हम इन इमारतों पर अधिकार करेंगे, इन प्लेग-ग्रस्त रोगियों को उनमें रक्खेंगे, और उनका अस्पताल की तरह उपयोग करेंगे; क्योंकि मेरे मन से ये इमारतें राष्ट्र के सर्वोच्च हितों के विरुद्ध हैं। वे भारतवर्ष के करोड़ों लोगों की स्थिति को प्रकट नहीं करतीं। वे तो इस मेज़ के पास बैठे हुए धनिक लोगों की शोभा देने जैसी हो सकती हैं,—भोपाल के नवाब साहब अथवा सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सर फ़िरोज सेठना अथवा सर तेजबहादुर सप्रू के योग्य हो सकती हैं, किन्तु जिन लोगों के पास रात को सोने के लिए स्थान नहीं और खाने के लिए रोटी का टुकड़ा

नहीं, उनकी दशा के साथ इनका जरा भी मेल नहीं हो सकता। यदि राष्ट्रीय सरकार इस निर्णय पर पहुँचे कि वह जगह अनावश्यक है तो इस बात की कुछ परवाह नहीं कि उस पर कितने ही अधिकार क्यों न हों, वे सब रद्द किये जाकर ये इमारतें ले ली जायँगी और मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि वे बिना किसी मुआवजे के ले ली जायँगी, क्योंकि यदि आप इस सरकार से मुआवजा दिलाना चाहेंगे तो उसका अर्थ होगा माधो को देने के लिए ऊधो से छीनना। वह एक असम्भव बात होगी।

महासभा जिस सरकार की कल्पना करती है, वैसी सरकार का अस्तित्व स्थापित होनेवाला हो तो आपको यह कड़वी गोली निगलनी होगी। इस विश्वास के धोखे में रखकर कि सब बातें सर्वथा ठीक होंगी, मैं आपको धोखा नहीं देना चाहता। महासभा की ओर से मैं सारी बाजी आपके सामने रख देना चाहता हूँ। मैं मन में किसी तरह की कुछ बात छिपा कर नहीं रखना चाहता और इसके बाद यदि महासभा का दावा आपको स्वीकृत हो तो मुझे अत्यन्त आनन्द होगा, किन्तु यदि आपको वह स्वीकृत न हो, यदि आज मुझे ऐसा प्रतीत हो कि मैं आपके हृदय को स्पर्श कर अपनी बात आप से नहीं मनवा सकता, तो जब तक आप समझा हृदय-परिवर्तन नहीं हो जाता, और आप भारत के करोड़ों को यह अनुभव करने का मौक़ा

नहीं देते कि अन्त में उन्हें राष्ट्रीय सरकार मिल गई, तब तक महासभा को भटकते रहना और आपके मतपरिवर्तन का प्रयत्न करते रहना होगा।

फौजदारी मामले

प्रस्ताव की इन पंक्तियों पर अभीतक किसी ने एक भी शब्द नहीं कहा है:—

"यह स्वीकार किया गया कि भारत में यूरोपियन जातियों को फौजदारी मामलों में जो अधिकार हैं, वे क़ायम रहने चाहिएँ।"

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इसके सब गर्भित अर्थों का मैं अध्ययन नहीं कर सका हूँ। मुझे यह कह सकने के लिए खुशी है कि कुछ दिनों से सर ह्यूबर्ट कार, श्री ग्रेन्थॉल और कई मित्रों के साथ मैं मित्रतापूर्ण और ख़ानगी बात-चीत चला रहा हूँ। उनके साथ इसी विषय की चर्चा कर रहा था, और मैंने उनसे पूछा कि इन दोनों बातों का क्या अर्थ है? और उन्होंने कहा कि दूसरी जातियों के लिए भी यही बात है। मैं उनसे इस बात का निश्चय न कर सका कि दूसरी जाति के लिए भी वही बात होने का क्या अर्थ है। मेरा ख़याल है, इसका यह अर्थ है कि दूसरी जातियाँ भी अपनी ही जाति की जूरी या पंच होने की माँग कर सकती हैं। इसका सम्बन्ध जूरी के ज़रिये होने-

वाले मुकद्दमों से है। मुझे भय है कि मैं इस सूत्र का समर्थन नहीं कर सकता।

मैं ऐसे अपवादों का समर्थन कर नहीं सकता—उनका साथ नहीं दे सकता। मेरा ख़याल है कि राष्ट्रीय सरकार को ऐसे प्रतिबन्धों से जकड़ रखना सम्भव नहीं है। आज भावी भारतीय राष्ट्र का अङ्ग बननेवाली सब जातियों को सद्भाव से श्री गणेश करना चाहिए; परस्पर विश्वास से आरम्भ करना चाहिए, अन्यथा आरम्भ ही न करना चाहिए। यदि हम से कहा जाय कि हमें उत्तरदायी शासन सम्भवतः मिल ही नहीं सकता; तो वह स्थिति समझ में आ सकती है। किन्तु हमसे कहा जाता है कि ये सब संरक्षण, ये सब अपवाद क़ायम रहने ही चाहिए। तो वह स्वतन्त्रता और उत्तरदायी शासन न होगा, वह तो केवल संरक्षण होंगे। संरक्षण सारी सरकार को खा जँयगे। यदि ये सब संरक्षण दिये जानेवाले हों और यहाँ की सब बातें मूर्त अथवा व्यावहारिकरूप धारण करनेवाली हों, और हम से कहा जाय कि तुम्हें उत्तरदायी शासन मिलने वाला है, तो वह सर्वथा वैसा ही उत्तरदायी शासन होगा, जैसा कि जेल में क़ैदियों का होता है। जेल की कोठरियों में ताला लगाने और जेलर के रवाना होते ही क़ैदियों का पूर्ण स्वराज्य हो जाता है। १० वर्ग फीट अथवा ७ फीट लम्बी ३ फीट चौड़ी इस कोठरी के अन्दर क़ैदियों का पूरा

स्वराज्य होता है। जिसमें जेलर अपने-अपने अधिकार के संरक्षणों को लिये हुए आराम से बैठे हों।

इसलिए अपने अंग्रेज मित्रों से मैं प्रार्थना करता हूँ कि उन्हे अपने अधिकारों से संरक्षण की माँग का यह विचार वापिस ले लेना चाहिए। मैं यह सूचना करने का साहस करता हूँ कि मैंने जो दो सूत्र पेश किये हैं, वे स्वीकार कर लिये जायँ। इन्हें आप जिस तरह चाहें काट-छाँट कर ठीक कर सकते हैं। यदि इनकी शब्द-योजना सन्तोषजनक न हो तो खुशी से दूसरे शब्द सुझाइए। किन्तु मैं साहस के साथ कहता हूँ कि, इन निषेधात्मक सूत्रों से बाहर, जिनमें कि आपके विरुद्ध कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है, आपको नहीं जाना चाहिए,—क्या मैं कहूँ कि आप इससे अधिक मँगाने का साहस नहीं कर सकते? इतना तो हुआ वर्तमान अधिकारों और भावी व्यापार के संबंध में?

मुख्य-उद्योग

श्री जयकर कल मुख्य उद्योगों के सम्बन्ध में बात-चीत कर रहे थे और उसमें उन्होंने जो विचार प्रकट किये मैं उनसे अपनी पूरी सहमति प्रकट करना चाहता हूँ। महासभा की धारणा यह है कि मुख्य उद्योगों को सरकार स्वयं अधिकार में न ले, तो कम-से-कम उनके संचालन, व्यवहार और विकास में तो सरकार की आवाज़ का प्राधान्य होना ही चाहिए।

हिन्दुस्थान जैसे ग़रीब और पिछड़े हुए देश की इङ्गलैण्ड जैसे अत्यधिक आगे बढ़े हुए उद्योग-प्रधान द्वीप से तुलना नहीं की जा सकती। मेरे विचार में आज जो बात ग्रेट ब्रिटेन के लिए हितकारी है वही भारत के लिए विषरूप है। भारत को अपना ही अर्थशास्त्र, अपनी ही राजनीति, अपनी ही उद्योग-पद्धति और अन्य सब अपना ही विकसित करना है। इसलिए मुख्य उद्योगों के सम्बन्ध में मुझे भय है कि अकेले इंगलैंड को ही नहीं, अन्य अनेकों को यह प्रतीत होगा कि उनके साथ न्याय नहीं हो रहा है। किन्तु एक सरकार के खिलाफ़ 'न्याय' का क्या अर्थ है यह मैं नहीं जानता।

तटवर्ती-व्यापार

और तटवर्ती व्यापार के लिए भी, महासभा की, उसे पूर्णरूप से विकसित करने के प्रति पूरी-पूरी सहानुभूति तो है ही; किन्तु यदि तटवर्ती व्यापार-सम्बन्धी बिल अर्थात् मसविदे में यूरोपियन होने के कारण उनके साथ कुछ भेद-भाव किया गया होगा, तो मैं यूरोपियनों से मिल जाऊँगा और उस मसविदे का, अथवा अंग्रेजों के साथ अंग्रेज होने के कारण किये गये भेदभाव के प्रस्ताव का, विरोध करूँगा। किन्तु अंग्रेजों ने तो भारत में अत्यन्त विशाल स्वार्थ जमा रक्खे हैं। बंगाल में मैंने नदी के मार्ग से काफ़ी सफ़र किया है, और वर्षों पहले ऐरावती का प्रवास भी किया है। इसलिए

इस व्यापार, के सम्बन्ध में मैं कुछ जानता हूँ। इन जबर्दस्त अंग्रेजी मण्डलों ने रिआयतों, विशेषाधिकारों और सरकार की कृपा द्वारा जो कम्पनियाँ खड़ी कर ली हैं और जो व्यापार जमा लिया है, उसका कोई जरा भी मुकाबला नहीं कर सकता।

चिटगाँव और रंगून के बीच एक नई स्थापित देशी कम्पनी के सम्बन्ध में आप में से कुछने सुना होगा। इस कम्पनी के मुसलमान मालिक बड़ी मुश्किल से इसे चला रहे हैं। रंगून में वे मुझे मिले और मुझसे पूछने लगे कि मुझसे कुछ हो सकता है या नहीं। इनके लिए मेरे हृदय में पूरा-पूरा सद्‌भाव तो उत्पन्न हुआ; किन्तु कुछ किया नहीं जा सकता था। क्या हो सकता था? उनके मुकाबले में जबर्दस्त ब्रिटिश इण्डिया नेवीगेशन कम्पनी खड़ी है। उसने इस उगती हुई कम्पनी को दबाने के लिए भाव में बिलकुल कमी कर दी है, और लगभग कुछ भी किराया लिये बिना मुसाफिरों को ले जाती है। मैं इस प्रकार के एक-के-बाद-एक अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। इसलिए यह प्रश्न ही नहीं कि यह अंग्रेजी कम्पनी है। इस व्यवसाय को दबा देने के विचार से स्थापित हिन्दुस्थानी कम्पनी होती, तो वह भी ऐसा ही करती। मान लीजिए कि कोई हिंदुस्थानी कम्पनी पूँजी ले जाती हो—जिस प्रकार आज ऐसे भारतीय मौजूद हैं, जो अपनी पूँजी को भारत में लगाने की

अपेक्षा अपना द्रव्य भारत से बाहर लगाते हैं। मान लीजिए कि राष्ट्रीय सरकार सही नीति पर नहीं चल रही है इस भय से भारतीयों का कोई विशाल मण्डल अपना सब मुनाफ़ा ले जाकर अपनी रकम को सुरक्षित रखने के लिए उसे किसी दूसरे देश में लगाता है। मेरे साथ इससे एक क़दम और आगे बढ़ कर मान लीजिए कि ये हिंदुस्थानी मालिक अतिशय वैज्ञानिक, सम्पूर्ण और त्रुटि-रहित संगठन करने के लिए यूरोपियनो के समान जितना सम्भव हो सके कौशल का उपयोग करें और इन असहाय कम्पनियो को अस्तित्व में ही न आने दें तो मैं आवश्य अपनी आवाज़ उठाऊँगा और चिटगाँव जैसी कम्पनी के संरक्षण के लिए क़ानून बनाऊँगा।

कुछ मित्र ऐरावती में अपने जहाज तक न चला सकते थे। उन्होंने मुझे इस बात का निश्चय कराने के लिए सुनिश्चित प्रमाण दिये कि यह बात सर्वथा अशक्य हो पड़ी थी। उन्हें परवाने—लाइसेन्स—मिल नहीं सकते थे और मनुष्य जिन साधारण सुविधायें पाने का अधिकारी है, वे तक न मिल पाती थीं। हम में से प्रत्येक जानता है कि पैसा क्या ख़रीद सकता है, सम्मान एवम् प्रतिष्ठा क्या ख़रीद सकती है और जब ऐसी प्रतिष्ठा क़ायम हो जाय जो कि सब नन्हे पौदो को मार डालती हो तो, ४२ वर्ष पूर्व कहे हुए सर जॉन गोर्स्ट के शब्दों में, "ऊँचे वृक्ष मात्र को उड़ा देना पड़ता है। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों

को इन नन्हे पौधों को नहीं कुचल डालने, देना चाहिए।" तट अथवा किनारे के व्यापार के सम्बन्ध में यही वास्तविक माँग है। सम्भव है इस सम्बन्धी मसविदे—बिल—की भाषा अटपटी हो। इसकी चिन्ता नहीं, किन्तु मेरा ख़याल है कि इसका सार-तत्त्व सर्वथा सही है।

नागरिक की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन काम है। आज मै महासभा की मनोदशा को जैसी समझता हूँ, उसे देखते हुए महासभा क्या उचित समझेगी अथवा मुझे क्या उचित प्रतीत होगा, यह मैं आज इसी क्षण कहने की जिम्मेदारी अपने सिर पर नहीं ले सकता। यह बात ऐसी है, जिसमें सर तेज बहादुर सप्रू तथा अन्य मित्रों के साथ बातचीत करना और उनके मन के विचार जानना चाहूँगा, क्योंकि मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि इस चर्चा अर्थात् वाद-विवाद से मैं इस बात की तह तक पहुँच नहीं सका हूँ। मैंने महासभा की स्थिति को सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि हमें जातीय भेदभाव की जरा भी आवश्यकता नहीं है। किन्तु इस स्थिति को स्पष्ट कर देने के बाद 'नागरिक' शब्द की व्याख्या के विषय में महासभा के मत का तात्कालिक निर्णय करना शेष नहीं रह जाता। इसलिए 'नागरिक' शब्द के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूँगा कि अभी तुरन्त तो इस व्याख्या के सम्बन्ध में मैं अपना मत स्थगित रखता हूँ।

इतना कहने के बाद यह बात कह कर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। यूरोपियन मित्रों को सन्तोष करा सकने जैसा सर्व सम्मत सूत्र खोज निकालने के सम्बन्ध में मैं निराश नहीं हुआ हूँ। मैं समझता हूँ जिस बातचीत में भाग लेने का मुझे सौभाग्य मिला था, वह अब भी जारी रहनेवाली है। मेरी उपस्थिति की आवश्यकता होगी, तो इस छोटी समिति की बैठक मे मैं अब भी हाज़िर रहूँगा। इसे बढ़ा कर, इसका खानगीपन कम करने और इसका सर्व सम्मत आधार खोज निकालने का ही विचार है।

मैं फिर कहता हूँ कि जहाँ तक मैं समझ सका हूँ मैं ऐसी कोई तफ़सीलवार योजना का विचार नहीं कर सकता, जो विधान में शामिल की जा सके। विधान में तो इस के जैसा कोई सूत्र ही दाखिल हो सकता है, और वही सब अधिकारों का आधार माना जा सकता है।

कानूनी उपाय

आप देखेंगे कि इसमें सरकारी तन्त्र द्वारा कुछ किये जाने की कल्पना नहीं है। संघ-न्यायालय और सर्वोच्च-न्यायालय सम्बन्धी अपनी आशा मैं प्रकट कर चुका हूँ। मेरे लिए संघ-न्यायालय ही सर्वोच्च-न्यायालय है; यही अपील का अन्तिम न्यायालय है, जिस के आगे कोई भी अपील न हो सकेगी; यही मेरी प्रिवी कौंसिल है और यही स्वतन्त्रता का आधार-स्तम्भ है। यह वह अदालत है, जहाँ

सब व्यक्ति, जरा भी शिकायत होने पर जा सकते हैं। ट्रांसवाल के एक महान् क़ानून विशेषज्ञ ने, (और ट्रांसवाल तथा उसी तरह सारे दक्षिण अफ्रिका ने बहुत बड़े-बड़े क़ानून विशेषज्ञ पैदा किये हैं) एक अत्यन्त कठिन मुक़दमे के सम्बन्ध में एक बार मुझे कहा था "यद्यपि इस समय भले ही आशा न हो, किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि मैंने अपने जीवन में एक बात नज़र के सामने रक्खी है, अन्यथा मैं वकील ही नहीं हो सकता था। वह बात यह है,—"क़ानून हम वकीलों को सिखाता है कि ऐसा कोई भी अन्याय नहीं है, जिसका अदालत में कुछ भी इलाज न मिलता हो, और जो न्यायाधीश यह कहे कि कोई इलाज नहीं है, तो उन न्यायाधीशों को तुरन्त ही न्यायासन से उतार देना चाहिए।" लार्ड चान्सलर महाशय, आपके प्रति पूरा सम्मान रखते हुए भी, वही बात मैं आपसे कहता हूँ।

इसलिए मै चाहता हूँ कि हमारे यूरोपियन मित्र इस बात का इतमिनान रक्खें कि जिस प्रकार सम्राट्-सरकार के सलाहकार मन्त्रियों की कृपा हमें प्राप्त न हो तो हम खाली हाथों लौटने की अपेक्षा करते हैं, उस तरह भावी संघ-न्यायालय उन्हें ख़ाली हाथ न लौटावेगा। मैं अब भी आशा कर रहा हूँ कि हम अपनी बात उन्हें सुना सकेंगे और उनके हृदय का सद्भाव जागृत कर सकेंगे; और तब हम अपनी जेबों में कुछ वास्तविक एवम् ठोस बात लेकर

जाने की आशा कर सकेंगे। परन्तु हम अपनी जेबों में कुछ वास्तविक एवम् ठोस वस्तु लेकर जायँ अथवा न जायँ, मुझे आशा है कि यदि मेरे स्वप्न की-सी अदालत—संघ न्यायालय—स्थापित हो तो यूरोपियन और अन्य सब—सब अल्पसंख्यक जातियाँ—विश्वास रक्खें कि मुझ जैसा अल्पव्यक्ति कदाचित भले ही उन्हें निराश करे; किन्तु यह अदालत उन्हें कभी निराश न करेगी। ×

× भाषण के बाद नीचे लिखी बहस हुईः—

सर तेज बहादुर सप्रू—क्या म० गाँधी यह सूचित करते हैं कि भावी राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक व्यक्ति के स्वामित्व अथवा मालिकाना अधिकार की जाँच करेगी और यदि ऐसा हो तो यह मालिकाना अधिकार किसी खास मियाद के अन्दर मिला होना चाहिए या नहीं ? इस अधिकार की जाँच के लिए वह कैसा तन्त्र स्थापित करना चाहते हैं, और वे कुछ मुआवज़ा देना चाहेंगे अथवा राष्ट्रीय सरकार अपने अथवा बहुमति के विचार के अनुसार जिस मिल्कियत को अनुचित रूप से प्राप्त की गई समझेगी, उसे ज़ब्त कर लेगी।

गाँधीजी—जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह काम सरकारी तन्त्र द्वारा न होगा, जो कुछ भी होगा खुले आम होगा। न्यायतन्त्र द्वारा ही होगा।

सर तेजबहादुर सप्रू—वह न्यायतन्त्र कैसा होगा ?

गाँधीजी—अभी इस समय तो मैंने किसी मर्यादा का विचार नहीं किया है। मैं समझता हूँ कि अन्याय के विरुद्ध कोई मर्यादा नहीं है।

सर तेजबहादुर सप्रू—इसलिए आपकी राष्ट्रीय-सरकार के अंतर्गत कोई भी मालिकाना हक़ सुरक्षित नहीं है न ?

गाँधीजी—हमारी राष्ट्रीय-सरकार के अन्तर्गत इन सब बातों का निर्णय अदालत करेगी, और यदि इन बातों के सम्बन्ध में कोई अनुचित शङ्का होगी, तो मैं समझता हूँ प्रत्येक उचित शङ्का का समाधान किया जासकना सम्भव है। मुझे यह कहने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं है कि सामान्यतः यह स्वीकार कर लिया जाने योग्य है जहाँ वहाँ शिकायत हो कि अधिकार न्याय पूर्वक प्राप्त किये गये हैं, यह अदालतों को इन अधिकारों की जाँच की छुट्टी होनी चाहिए। मैं आज शासन—सूत्र को हाथ लेते समय यह नहीं कहूँगा कि एक भी अधिकार अथवा एक भी मालिकी के स्वत्व की जाँच न करूँगा।

[६]

अर्थ

श्रीमन्, इस महत्वपूर्ण विषय पर दिये हुए आपके (लार्ड रीडिङ्ग के) व्याख्यान को मैंने अत्यन्त ध्यानपूर्वक और सम्मान सहित सुना। इस संबंध में मैंने पारसाल की संघ-विधायक-समिति की रिपोर्ट के वे पैरे जो आर्थिक समस्या के ऊपर लिखे गये हैं, पढ़े। मेरे विचार में वे पैरे १८, १९ और २० हैं। मुझको यह राय प्रकट करने में अत्यन्त खेद है कि मैं इन पैरों में बताये गये प्रतिबन्धो से सहमत नहीं हूँ। जबतक कि हम ठीक तौर पर अपने आर्थिक बोझ को नहीं जान पाते तबतक मेरी स्थिति और मैं समझता हूँ कि हम सबकी स्थिति अति कठिन होगी।

कर्ज की जांच

मैं अब और अधिक साफ-साफ कहता हूँ कि यदि 'सेना' एक रक्षित विषय समझी जायगी तो मैं एक दृष्टि-कोण से विचार करूँगा, और यदि 'सेना' हस्तान्तरित विषय समझी जायगी तो मैं दूसरे दृष्टिकोण से विचार करूँगा। अपनी राय प्रकट करने में एक भारी कठिनाई

यह भी है कि महासभा का यह दृढ़ मत है कि भावी सरकार को जो क़र्ज़ा अपने ऊपर लेना पड़ेगा उसकी पक्षपात रहित जाँच पड़ताल की जाय।

चार पक्षपात रहित सदस्यो द्वारा तैयार की हुई मेरे पास एक रिपोर्ट है। उनमे से दो तो बम्बई की हाइकोर्ट के पुराने एडवोकेट-जनरल हैं, मेरा अभिप्राय श्री बहादुरजी तथा श्री भूलाभाई देसाई से है। तीसरे विचारक या उस कमिटी के सदस्य प्रोफेसर शाह हैं जो अखिल-भारतीय प्रसिद्धि प्राप्त किये हुए हैं और भारतीय अर्थशास्त्र की बहुत सी बहुमूल्य पुस्तकों के रचयिता हैं। उस कमिटी के चौथे सदस्य श्री० कुमारप्पा हैं जिन्होंने यूरोप की उपाधियाँ प्राप्त की हैं और जिनकी अर्थ विभाग पर दी गई रायें पर्याप्तमात्रा में मानी जाती हैं और प्रभावशाली समझी जाती हैं। इन चार महानुभावों ने एक भारी रिपोर्ट पेश की है जिसमें इन्होंने जैसा कि मैं कहता हूँ पक्षपात-रहित जाँच के लिए सिफ़ारिश की है। इस रिपोर्ट में यह भी दिखाया गया है कि बहुत-सा क़र्ज़ा वास्तव में भारत का नहीं है।

इस सम्बन्ध में मैं अति सम्मान-सहित यह बतला देना चाहता हूँ कि महासभा ने यह कभी नहीं कहा है—जैसा कि उसके विरुद्ध कहा जाता है—कि वह राष्ट्रीय क़र्ज़े की एक कौड़ी तक अस्वीकार करती है। महासभा ने जो कुछ

कहा है वह यही है कि कुछ कर्ज़ा, जो भारत का समझा जाता है, भारत पर नहीं मढ़ा जाना चाहिए, परन्तु ब्रिटेन को वह कर्ज़ा लेना चाहिए। इन सब कर्ज़ों की एक विवेचना-पूर्ण जाँच इस रिपोर्ट में मिल सकती है। उन बातों का पाठ करके मैं इस समिति को थकाना नहीं चाहता। इन दो भागो का जो लोग भलीभाँति अध्ययन करना चाहें वे इस अध्ययन से बहुत लाभ उठा सकते हैं और कदाचित् उनको पता लगेगा कि ऋण का कुछ भाग भारत के ऊपर नहीं मढ़ा जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में मैं समझता हूँ कि यदि प्रत्येक अपनी वास्तविक स्थिति समझे तो एक निश्चित राय देना सम्भव है। परन्तु यहाँ मैं यह बतलाने का साहस करता हूँ कि संघ-विधायक समिति में १८, १९ और २०, पैरो में जिन प्रतिबन्धो अथवा संरक्षणों की ओर इशारा किया गया है, वे भारत को आगे बढ़ने में सहायक होने के बजाय प्रत्येक क़दम पर उसकी उन्नति के बाधक ही होंगे।

भारत का हित

श्रीमन् आपने कहा था कि भारतीय मन्त्रियों में विश्वास की कमी का प्रश्न मेरे सन्मुख उपस्थित नहीं है। इसके विपरीत आपको यह आशा थी कि भारतीय मंत्री दूसरे मंत्रियों के समान ही भली-भाँति कार्य करेंगे। परन्तु भारत की सीमा के बाहर भारत की साख (Credit) से आपका मतलब था। आपका यह भी मतलब था कि यदि बताये हुए संरक्षण

नहीं रक्खे गये तो वे पूँजी लगानेवाले, ज भारत में पूँजी लगाते थे और उचित व्याज पर भारत को रुपया देते थे, सन्तुष्ट नहीं होंगे । यदि मुझको ठीक याद है तो आपने यह कहा था कि यदि यहाँ से भारत में रुपया लगाया गया अथवा रुपया भेजा गया तो यह नहीं समझना चाहिए कि यह रुपया भारत के हित में नहीं लगा है।

यदि मुझको ठीक-ठीक याद है तो आपने इन शब्दों का प्रयोग किया था "स्पष्ट ही यह (ऋण) भारत के हितकर होगा ।" म इस सम्बन्ध में किसी दृष्टान्त की प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु नि:सन्देह आपने यह समझ लिया कि हम इन मामलों को या ऐसे उदाहरणों को जानते हैं। जब कि आप भाषण दे रहे थे तब इस बात के विपरीत कुछ दृष्टान्त मुझे मालूम थे। मैंने अपने मन में कहा कि मेरे अनुभव में ही कुछ दृष्टान्त ऐसे आये हैं जिससे मैं यह प्रमाणित कर सकता हूँ कि इन दृष्टान्तों में ब्रिटेन और भारत के हित एक-से नहीं थे, दोनो के हित एक-दूसरे से विपरीत थे, और इस कारण हम यह नहीं कह सकते कि ब्रिटेन से लिया गया ऋण सर्वदा भारत के लिए हितकारी था।

उदाहरण के तौर पर बहुत से युद्धों को ही ले लीजिए। अफ़गानिस्तान के युद्धों को ही देखिए। जब कि मैं युवक था, मैंने स्वर्गीय सर जान के का लिखा हुआ अफ़गान-

युद्धों का हाल बड़े कौतूहल से पढ़ा था और मेरी स्मृति में यह बात भली-भाँति अङ्कित हो गई है कि इनमें के बहुत से युद्ध भारत के लिए हितकर नहीं थे। इतना ही नहीं, गवर्नर जनरल ने इन युद्धों में प्रमाद से काम किया था। स्व० दादाभाई नवरोजी ने हम नवयुवकों को यह सिखाया था कि भारत में अंग्रेजों की अर्थ-नीति का इतिहास जहाँ रक्त-शोषक नहीं है वहाँ कलुषता पूर्ण और प्रमाद से भरा हुआ है।

विनिमय दर

लार्ड चान्सलर ने यह चेतावनी दी थी और इस चेतावनी पर आपने भी ज़ोर दिया था कि वर्तमान समय में आर्थिक समस्या बड़ी नाजुक है और इस कारण हम में से जो इस बहस में भाग ले उनको अत्यन्त सावधान रहना चाहिए, और बुरी रीति से इस विषय में प्रवेप नहीं करना चाहिए जिससे जिन कठिनाइयों का अर्थ-मंत्री को सामना करना पड़ रहा है, उनमें बढ़ती हो जाय। इस कारण मैं विस्तार मे नहीं जाऊँगा, परन्तु विनिमय दर के बढ़ाने के बारे में एक बात कहे बिना मैं नहीं रुक सकता। मेरा अभिप्राय उस समय से है जब रुपये को १ शिं. ४ पें. से बढ़ा कर १ शिं. ६ पें. कर दिया गया था। यद्यपि उन भारतीयों ने, जिनका महासभा से कुछ सम्बन्ध नहीं था, इस बात का एकमत से विरोध किया था। वे सब अपना मत

प्रगट करने में स्वतन्त्र थे। उनमें से कुछ अर्थ-शास्त्र में दक्ष थे और जो कुछ वे कहते थे उसको भली प्रकार समझते भी थे। यहाँ फिर यही पता लगता है कि विदेश के हित के लिए भारत का हित दबा दिया गया। इस बात के जानने के लिए किसी निपुण मनुष्य की आवश्यकता नहीं होती कि मूल्य में गिरा हुआ रुपया किसानों के लिए सदा हितकारी होता है या नियमानुसार हितकारी होगा। मुझ पर अर्थशास्त्रियों के यह स्वीकार करने का बहुत असर हुआ था कि यदि रुपया विलायत के नोट (Sterling) के साथ न जोड़ा जा कर स्वयं अपने ऊपर छोड़ दिया जाय तो इससे किसानों को बहुत लाभ होगा। वे अन्तिम छोर की ओर जा रहे थे और यह समझते थे कि यदि रुपया स्वयं अपनी दर स्थापित करने के लिए छोड़ दिया गया और गिरते-गिरते अपनी वास्तविक क़ीमत अर्थात् ६ या ७ पेंस पर आ गया तो भारत के लिए यह एक दुर्घटना होगी। व्यक्तिशः मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि इससे भारतीय कृषक को किसी प्रकार की हानि पहुँचेगी।

ऐसी दशा में मैं उन संरक्षणों को, जो भारतीय अर्थ-मंत्री के अपना उत्तरदायित्व पालन करने के कार्य में रुकावट डालेंगे, नहीं मान सकता और यह उत्तरदायित्व पूर्णतया प्रजा के हित में होगा

साधन

इस समिति का ध्यान मुझे एक बात की ओर और आकर्षित करना है। लार्ड चांसलर और आपने यद्यपि साव-धानी के लिए कह दिया है तो भी मुझको यह अनुभव होता है कि यदि भारतीय अर्थ विभाग का ठीक प्रवन्ध भारत के हित में हो तो विदेश के वाज़ार में—अर्थात् लन्दन में—दर में इतनी तेजी मन्दी न हो। इसके लिए मैं कारण वताता हूँ। जव सर डेनियल हेमिल्टन के लेखो से मैं पहले-पहल परिचित हुआ तो मैं कुछ आशङ्का और हिचकिचाहट से उनके पास पहुँचा। भारतीय अर्थ-समस्या के सम्वन्ध मे मै कुछ नहीं जानता था। मेरे लिए यह विषय बिलकुल नया था। परन्तु उन्होंने उत्साह के साथ मुझे उन पत्रों को पढ़ने के लिए, जो वे मुझे लगातार भेजते थे, खूव ज़ोर दिया। जैसा कि हम सव जानते हैं उनको भारत के साथ वहुत दिलचस्पी है, वे महत्वपूर्ण पदो पर भी रहे हैं और स्वयं एक योग्य अर्थशास्त्री हैं। वह आज-कल अपने प्रदर्शित पथानुसार प्रयोग कर रहे हैं, और जो लोग भारतीय अर्थ-समस्या को उनके दृष्टिकोण से सम-झना चाहेंगे उन सव के सामने उन्होंने एक प्रभावोत्पादक विचार रख दिया है। वह कहते हैं कि भारत को सोने के माप की; चाँदी के माप की या और किसी धातु क माप की आवश्यकता नहीं है। भारत के पास एक स्वयं अपनी

ही धातु है और वह धातु उसके अनगिनती करोड़ों श्रमिको के रूप में हैं। यह सत्य है कि भारत के आर्थिक सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार अभी तक दिवालिया नहीं हुई है, और अभीतक सब भुगतान करती रही है, परन्तु यह सब किस क़ीमत पर हुआ है? यह कृषक को हानि पहुँचाकर ही हुआ है, कृषक से धन छीन लिया गया है। यदि आर्थिक-समस्या को रुपयों में समझने के बजाय अधिकारीगण सर्व साधारण के रूप में समझते तो मेरी क्षुद्र राय में वह भारत के मामले का प्रबन्ध अब तक की अपेक्षा कहीं अच्छा कर सकते। तब उनको विदेशी बाज़ार की शरण नहीं जाना पड़ता। प्रत्येक इस बात को मानता है और अंग्रेज़ अर्थशास्त्रियों ने यह कहा है कि सदा दस में से नौ वर्षों में व्यापार का शेष भारत के अनुकूल रहता है।

अर्थात् जब कभी भारत का व्यापार साल में आठ आने या दस आने के बराबर ही रह जाता है तब भी व्यापार भारत के अनुकूल ही रहता है। उदार प्रकृति पृथ्वीमाता से भारत अपना सब ऋण चुकाने के लिए और अपनी आवश्यक आयात से भी अधिक पैदा करता है। यदि यह सत्य है और मैं कहता हूँ कि यह सत्य है, तो भारत के समान देश को विदेशी पूँजीपति के सामने झुकना ठीक नहीं है। भारत को विदेशी पूँजपति के सामने झुकाया गया है कारण कि एक बहुत बड़े परिमाण में 'होमचार्जेज़'

के रूप में भारत से धन वाहर गया है और भारत की रक्षा में भीषण व्यय किया गया है। इन ऋणों के चुकाने मे भारत सर्वथा असमर्थ है परन्तु यह सब एक ऐसी नीति से चुकाये गये हैं जिनकी स्थानापन्न कमिश्नर स्व० रमेशचन्द्र दत्त ने बहुत अच्छी तरह निन्दा की थी। मुझको मालूम है इसी सम्बन्ध में स्व० लार्ड कर्जन से उनका विवाद हो गया था और हम भारतीय इस नतीजे पर पहुँचे कि रमेशचन्द्र दत्त ही ठीक थे।

परन्तु मैं एक क़दम और आगे बढ़ना चाहता हूँ। यह तो सबको मालूम है कि भारतीय कृषक साल में छः महीने वेकार रहते हैं। यदि ब्रिटिश सरकार इस बात का प्रवन्ध करदे कि वर्ष में छः महीने ये लोग वेकार न रहे, तो सोचो कि कितना धन पैदा किया जा सकता है। तो फिर क्यों हमको विदेशी बाज़ार की ओर झुकने की आवश्यकता पड़ेगी? मुझ साधारण मनुष्य को—जो सर्वसाधारण का ही विचार रखता है और जो वही अनुभव करना चाहता है जैसा कि सामान्य लोग—समस्त आर्थिक समस्या इसी रूप में दिखाई पड़ती है। वे कहते हैं कि हमारे पास श्रमिक यथेष्ठ हैं, इस कारण हम किसी विदेशी पूँजी को नहीं लेना चाहते। जबतक हम श्रम करते है, तबतक हमारे श्रम से पैदा हुई वस्तुएँ संसार चाहेगा। और यह सत्य है कि समस्त संसार हमारे श्रम से पैदा हुई

चीजें चाहता है। हम वही चीजें पैदा करेंगे जिन्हें संसार स्वयं खुशी से लेगा। अत्यन्त प्राचीनकाल से भारत की ऐसी ही दशा रही है। इस कारण मैं उस डर का अनुभव नहीं करता जो भारतीय अर्थ-समस्या के सम्बन्ध में आपने बताया है। मेरी राय में जबतक हम अपने द्वार-रक्षकों पर पूर्ण नियन्त्रण और निर्बाध अपना बजट अपने क़ाबू में न रक्खेंगे तबतक हम अपने ऊपर उत्तरदायित्व नहीं ले सकेंगे और ऐसे भार को उत्तरदायित्वपूर्ण कहना अनुपयुक्त होगा।

संरक्षणों का स्वरूप

वर्तमान समय में मेरी स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं अपने संरक्षण बताऊँ। अपने संरक्षणों को मैं उस समय तक नहीं बता सकता जबतक मैं यह नहीं जान जाऊँ कि भारतीय राष्ट्र को पूर्ण जिम्मेदारी, तथा सेना और सिविल सर्विस पर पूर्ण नियन्त्रण मिलेगा और भारत अपनी आवश्यकतानुसार सिविलियनों को तथा सिपाहियों को उन्हीं शर्तों पर रक्खेगा जो भारत जैसे दरिद्र राष्ट्र के लिए उपयुक्त होंगी। जबतक मैं इन सब बातों को न जान जाऊँ तबतक मेरे लिए संरक्षण बताना प्रायः असम्भव है। जबतक कि कोई भारत की इस योग्यता में, कि वह अपना भार स्वयं उठाने के योग्य है और अपना कार्य शान्ति से चला सकता है, अविश्वास न करे, तबतक, वास्तव में, इन सब बातों पर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि संरक्षणों की

कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में केवल एक ही खतरा, जो मैं देख सकता हूँ, यह हो सकता है कि ज्यों ही हम कार्यभार अपने ऊपर लेंगे त्योंही बड़ी अस्तव्यस्तता और विप्लव फैल जायगा। यदि अंग्रेजों को यही डर है तो हमारे और उनके क्षेत्र भिन्न हैं। हम उत्तरदायित्व लेते हैं और माँगते हैं क्योंकि हमें विश्वास है कि हम अपना शासन भली प्रकार चला लेंगे, और मैं तो समझता हूँ कि अंग्रेज-शासकों की अपेक्षा हम अपना शासन अधिक अच्छी तरह करेंगे। इसका कारण यह नहीं है कि वे अयोग्य हैं। मैं यह मानने को तैयार हूँ कि अंग्रेज हमसे अधिक योग्य और अधिक संगठन-शक्ति रखनेवाले हैं जिसकी शिक्षा हमको उनके पैरों के नीचे रहकर लेनी है। परन्तु हमारे पास एक बात है और वह यह कि हम अपने देश को और अपने लोगों को जानते हैं और इस कारण हम अपनी सरकार सस्ते में चला सकते हैं। सब झगड़ों से दूर रहने की हम कोशिश करेंगे क्योंकि हमारी आकाँक्षाएँ साम्राज्यवादी नहीं हैं इस कारण, हम अफ़ग़ानियों से अथवा और किसी राष्ट्र से युद्ध नहीं करेंगे, वरन् हम मित्र-भाव स्थापित करेंगे और उनको हमसे डरने की कोई बात नहीं होगी।

भारत की आर्थिक समस्या को सोचते हुए मेरे मन में यही आदर्श उपस्थित होता है। अतः आपको मालूम होगा

कि मेरी कल्पना में भारतीय अर्थ-समस्या इतनी वड़ी या इतनी भयानक नहीं है जितना कि आप, लार्ड चांसलर अथवा अंग्रेज मंत्री, जिनसे मुझे इस प्रश्न पर बहस करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, इसको (अर्थ-समस्या को) अपने मन में समझते हैं। अतः ऊपर बताये हुए कारणों से मैं सम्मान सहित यह कहना चाहता हूँ कि इन संरक्षणों को और ब्रिटिश जनता और ग्रेटब्रिटेन के जिम्मेदार लोगों के डर को मंजूर कर लेना मेरे लिए संभव नहीं है।

राष्ट्रीय-सरकार जिन ऋणों को अपने सिर पर लेगी उसकी ज़मानत उसी तरह की देगी जैसी कि एक राष्ट्र सम्भवतः दे सकता है। परन्तु इन पेरेग्राफों में जैसी ज़मानतों के लिए लिखा है वैसी मेरी राय में नहीं दी जा सकती। निःसन्देह कुछ ऋण ऐसा है जिसको हमें अपने ऊपर लेना पड़ेगा और ग्रेट ब्रिटेन को चुकाना पड़ेगा। यदि यह मान लिया जाय कि हमने असावधानी से काम किया तो काग़ज़ पर लिखी हुई शर्तों का क्या मूल्य रह जायगा? अथवा मान लो दुर्भाग्य से, उस समय से, जब कि भारत अपना शासन अपने हाथ मे ले, बहुत-से बुरे वर्ष एक-के-बाद-एक आवें; तो मैं यही समझता हूँ कि कोई संरक्षण भारत से रुपया छीनने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। ऐसी आपत्तिजनक परिस्थियों के अदृश्य कारणों से किसी भी राष्ट्रीय सरकार को ज़मानत देना सम्भव नहीं होगा।

मैं अपने भाषण को अत्यन्त दुःख के साथ ख़तम करता हूँ क्योंकि मुझे इतने अधिक अधिकारियों का, जिनको भारत के मामलों का अनुभव है, और अपने उन देशवासियों का जो गोलमेज़ परिषद् में सम्मिलित हुए हैं, विरोध करना पड़ता है। परन्तु यदि महासभा का प्रतिनिधि होते हुए मुझको अपना कर्तव्य पालन करना है तो किसी की नाराज़ी का जोख़िम उठाकर भी मुझको अपनी और महासभा के बहुत से सदस्यों की सम्मिलित राय प्रकट कर देनी चाहिए। ×

× भाषण समाप्त होने पर लार्ड रीडिंग ने कहा—

"मैं नहीं समझता कि आपने, जो कुछ मैंने कहा था, उसको ठीक तौर पर सदस्यों को बतलाया। सम्भव है कि कही हुई बातों का यह ग़लत बयान हो। अब मुझको यही कहना है कि अर्थ सम्बन्धी अपने व्याख्यानों में मैं सब कुछ कह चुका हूँ, परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि मैं यह मानलूँ कि उनका कोई उत्तर नहीं है।

गाँधीजीः—निश्चय ही नहीं।

[१०]

प्रान्तीय स्वराज्य

मैं अध्यापक लीस-स्मिथ को बधाई देता हूँ कि उन्होंने यह चर्चा उठाई। अध्यक्ष महाशय, मैं आपको भी बधाई देता हूँ कि आपने इस चर्चा की इजाजत दी। मेरे ख़याल में अध्यापक लीस-स्मिथ ने इस वाद-विवाद को शुरू करने का भार अपने ऊपर लेकर विलक्षण आशा-वादिता का परिचय दिया है। वे प्राणवायु की पिचकारी लेकर वैद्य के रूप में आये हैं और एक मृतःप्राय शरीर में प्राणवायु भरने की कोशिश कर रहे हैं। मैं यह नहीं कहता कि केन्द्रीय उत्तरदायित्व से रहित प्रान्तीय स्वराज्य की धमकी की अफ़वाह के कारण हमारी यह समिति मुर्दा-सी हो गई है। मैं तो अपने नम्रभाव से इस समिति की कार्रवाई के शुरू से ही चेतावनी के शब्द कहता रहा हूँ। मेरा तो इस वास्तविकता-विहीन वायु-मण्डल में दम घुट रहा था और मैंने इन्हीं शब्दों में यह बात कह भी दी थी। सर तेजबहादुर सप्रू को तो यह अनुभव जैसा मुझे संयोगवश मालूम हुआ है कुछ ही दिन से, होने लगा है; उन्होंने अपने दूसरे मित्रों और साथियों की तरह मुझ-

पर भी यदि मैं भी अपने को उनका साथी समझूं विश्वास करने की कृपा की है और अपने दिल की बात कही है।

सर तेजबहादुर उच्च सरकारी पदों पर रह चुके हैं। उन्हें शासन-सम्बन्धी मामलो का बहुत अनुभव भी है। उसके आधार पर उन्होने इस प्रान्तीय स्वराज्य नामधारी ख़तरे से खबरदार रहने की चेतावनी दी है। मैं बहुधा भूलें कर बैठता हूँ इसलिए उन्होंने ख़ास तौर पर मुझे लक्ष्य में रख कर यह चेतावनी दी है। इसका कारण यह है कि मैंने प्रान्तीय स्वराज्य के सवाल पर कई अंग्रेज़ दोस्तों से—इस देश के ज़िम्मेदार सार्वजनिक व्यक्तियो से—चर्चा करने का साहस किया है। इसकी ख़बर सर तेजबहादुर को मिल गई थी और इसीलिए उन्होंने मुझे काफ़ी सचेत कर दिया है। यही कारण है कि हस्ताक्षर करने वालों में आप मेरा भी नाम देखते हैं। परन्तु, अध्यक्ष महोदय, मैंने हस्ताक्षर इस कागज़ पर नहीं किये है जो आपके सामने पेश किया गया है, बल्कि ऐसे ही दूसरे पत्र पर किये हैं जो दस दिन पहले अख़बारों को भेजा गया है और प्रधान मंत्री के नाम दिया गया है। जो बात मैं यहाँ कहता हूँ वही मैंने उनसे कही थी कि भले ही अलग रास्तो से सही, वे और उनके बाद में बोलने वाले दूसरे लोग तथा मैं एक ही नतीजे पर पहुँचे हैं। 'जहाँ देवताओं को पैर रखते भी डर लगता है वहाँ मूर्ख घुस पड़ते हैं।' शासन का कोई

अनुभव न होते हुए भी मैंने सोचा कि यदि मेरी कल्पना में जो प्रान्तीय स्वराज्य है वही मिलती हो तो मैं इस फल को हाथ में लेकर और उसे टटोल कर क्यों न देखलूँ कि यह चीज वास्तव में मेरे काम की है भी या नहीं। मुझे अपने से विरुद्ध नीति रखनेवाले मित्रों से मिलकर, उन्हीं की विचार धारा में घुसकर, उनकी कठिनाइयाँ भी जानने का शौक है। मैं यह भी खोजा चाहता हूँ कि जो कुछ ये लोग दे रहे हैं उसमें शायद आगे चलकर वही चीज़ मिल जाय जो मैं चाहता हूँ। इसी भावना से और इसी अर्थ में मैंने प्रान्तीय स्वराज्य पर भी विचार करने का साहस किया था। परन्तु वादविवाद से मुझे तुरन्त पता लग गया कि प्रान्तीय स्वराज्य का अर्थ जो वे करते हैं वह वही अर्थ नहीं है जो मैं समझता हूँ। इसीलिए मैंने अपने मित्रों से भी कह दिया कि वे मुझे अकेला छोड़ दें तो भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा क्योंकि न तो प्रान्तीय स्वराज्य के मूर्खतापूर्ण विचार से और न देश के लिए कुछ भी ले मरने की आतुरता से ही मैं देश के हितों का बलिदान करनेवाला हूँ। मुझे चिन्ता है तो सिर्फ इतनी सी कि जब मैं अत्यंत सशंक हृदय से इतने कोसों से आया हूँ, जब सरकार और इस परिषद् के साथ जी-जान से सहयोग करने का मेरा पूरा इरादा रहा है और जब मैंने मन, वचन और कर्म से सहयोग की भावना रक्खी है तो अपनी ओर से कोई बात उठा

न रक्खूँ। इसीलिए मैंने खतरे की सीमा में घुसकर भी प्रन्तीय स्वराज्य की बात करने से परहेज नहीं किया है। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि आप अथवा ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल भारतवर्ष को उतना प्रान्तीय स्वराज्य नहीं देना चाहते जो मेरे जैसी मनोवृत्ति के आदमी को सन्तुष्ट कर सके, जिससे महासभा का समाधान हो जाय और जिसे स्वीकार करने को महासभा राजी हो जाय, फिर भले ही केंद्रीय दायित्व मिलने में देर लगे।

आतंक वाद की दवा

यहाँ इस समिति का थोड़ा समय लेने का जोखिम उठा कर भी अपनी बात साफ समझा देना चाहता हूँ क्योंकि इस मामले में भी मेरा तर्क जरा भिन्न प्रकार का है और मैं हृदय से चाहता हूँ कि मेरी बात को ग़लत न समझा जाय। अतः मैं एक उदाहरण देता हूँ। बंगाल को ही लीजिए। यह आज भारत वर्ष का एक ऐसा प्रान्त है जिसमें गहरी अशान्ति है। मैं जानता हूँ बंगाल में एक क्रियाशील हिंसा-वादी दल विद्यमान है। आज यह भी सब को मालूम होना चाहिए कि मेरे दिल में इस हिंसावादी दल के प्रति किसी भी प्रकार से कोई सहानुभूति नहीं हो सकती। मैं सदा से मानता आया हूँ कि हिंसावाद सुधारक के लिए बुरे-से-बुरा उपाय है, भारतवर्ष के लिए तो यह खास तौर पर घातक है क्योंकि इसका बीज भारत-भूमि में फूलफल ही नहीं

सकता। मेरा विश्वास है कि जो भारतीय युवक इस प्रकार के कामों को अच्छा समझकर अपनी जानें दे रहे हैं वे अपने प्राण बिल्कुल व्यर्थ गँवा रहे हैं और जिस स्थान पर हम सब लोग पहुँचना चाहते हैं उस स्थान के एक अंगुल नजदीक भी ये देश को नहीं ले जा रहे हैं।

मुझे इन सब बातो का यकीन है। परन्तु यक़ीन होने पर भी, मान लीजिए कि बंगाल को आज यदि प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त होता तो बंगाल क्या करता? बंगाल सारे-के-सारे नजरबन्द कैदियों को छोड़ देता। बंगाल—अर्थात् स्वायत्त-शासन भोगी बंगाल हिंसावादियो का पीछा न करता, प्रत्युत बंगाल उन तक पहुँच कर उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रत्यत्न करता। मुझे विश्वास है कि उनके हृदयों में बैठ कर मैं बंगाल से हिंसावाद का सफ़ाया कर सकता हूँ।

परन्तु जिस सत्य को मैं अपने भीतर देखता हूँ उसे प्रकट कर देने के लिए मैं एक क़दम और आगे बढ़ता हूँ। यदि बंगाल स्वायत्त-शासन-भोगी होता तो अकेला वह स्वराज्य ही वास्तव में बंगाल से हिंसावाद को मिटा सकता था। इसका कारण यह है कि ये हिंसावादी मूर्खता-वश यह समझते है कि उनके इन कृत्यों से ही स्वतंत्रता जल्दी-से जल्दी प्राप्त होगी। परन्तु जब वही स्वतंत्रता बंगाल को दूसरी तरह से मिल जाती है तो फिर हिंसावाद के लिए गुञ्जायश ही कहाँ रह जायगी?

आज एक हज़ार युवक ऐसे हैं जिनमें से कुछ के लिए मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि हिंसावाद से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। फिर भी ये हज़ार के हज़ार युवक मुक़दमा चलाये बिना और अपराध साबित हुए बिना गिरफ्तार कर लिये गये हैं। जहाँ तक चटगांव का सम्बन्ध है श्री सेनगुप्ता यहाँ मौजूद हैं। ये कलकत्ता के लार्ड मेयर, बंगाल व्यवस्थापिका सभा के सदस्य और बंगाल प्रान्तीय समिति के अध्यक्ष रह चुके हैं। वे मेरे पास एक रिपोर्ट लाये हैं। इस रिपोर्ट पर बंगाल के सभी दलो के लोगो के हस्ताक्षर हैं। इसे पढ़कर दुःख हुए बिना नहीं रह सकता। इसका सार यह है कि चटगांव मे भी आयर्लैण्ड के से, किन्तु उनसे घटित दर्जे के, अंधाधुन्ध अत्याचारो की पुनरावृत्ति की गई है। और यह भी बात नहीं कि चटगाँव भारतवर्ष में कोई ऐसी वैसी जगह हो।

हमें अब यह भी मालूम हो गया है कि कलकत्ते में झण्डा-प्रदर्शन किया गया, उस समय वहाँ सारी सैनिक शक्ति एकत्र की गई और उसे शहर के दस प्रधान बाज़ारों में घुमाया गया।

ये सब किसके खर्चे से किया गया और इसका उपयोग क्या? क्या इससे हिंसावादी डर जायँगे? मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वे नहीं डरेंगे। तो फिर क्या इससे महासभा वाले सविनय-भंग से विमुख हो जायँगे? यह भी नहीं

होने का। महासभा वाले तो इसके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। यही तो उनकी जाति का चिह्न है। उन्होंने इस प्रकार के कष्ट सहन करने का संकल्प कर लिया है। इस कारण वे इन बातो से डर जानेवाले नहीं हैं। ऐसे प्रदर्शनों पर हमारे बच्चे हँसते हैं। हम उन्हें यह सिखाना भी चाहते हैं कि वे न डरा करें—तोप, बन्दूक और हवाई जहाज इत्यादि से भयभीत न हुआ करें।

ठीक ढंग का

अब आप समझ गये होंगे कि प्रान्तीय स्वाराज्य की मेरी क्या कल्पना है। ये सब बातें उस दशा में असम्भव हो जायँगी। न तो उस समय मैं किसी एक भी सिपाही को बंगाल प्रान्त में घुसने दूँगा और न एक भी पैसा ऐसी फ़ौज पर खर्च होने दूँगा जिस पर मेरा नियन्त्रण न हो। इस प्रकार के प्रान्तीय स्वराज्य में तो आप बंगाल की ऐसी स्थिति की कल्पना ही नहीं कर सकते कि मैं सब नज़रबन्दियों को मुक्त कर दूँ और बंगाल के काले क़ानून रद्द कर दूँ। यदि यही प्रान्तीय स्वराज्य है तो बंगाल में तो वैसी ही पूर्ण स्वाधीनता स्थापित हो जाती है जैसी मैंने नेटाल में विकसित होते देखी है। यह छोटा-सा उपनिवेश है, परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था, इसकी अपनी स्वयंसेवक सेना आदि थी। आप बंगाल या अन्य प्रान्तों को इस प्रकार का स्वराज्य नहीं देना चाहते।

आप तो चाहते हैं कि केन्द्रस्थ सरकार ही शासन, नियन्त्रण आदि का काम भी करती रहे। परन्तु यह मेरी कल्पना का प्रान्तीय स्वराज्य नहीं है। इसीलिए मैंने आपसे कहा था कि यदि आप मुझे सच्चा प्रान्तीय-स्वराज्य देना चाहते हों तो उस पर मैं विचार करने को तैयार हूँ। परन्तु मुझे विश्वास हो गया है कि वह स्वराज्य नहीं आ रहा है। यदि वह आनेवाला हो तो हमें इतनी लम्बी-चौड़ी कारंवाई न करनी पड़ती और हमारा काम किसी दूसरे ही ढंग से चलता।

परन्तु मुझे एक बात का सचमुच और भी अधिक दुःख है। हम सब यहाँ एक ही उद्देश्य से लाये गये है। मुझे विशेषतः उस समझौते के द्वारा यहाँ लाया गया है जिसमें यह स्पष्ट लिखा है कि मैं केन्द्रीय शासन, में सच्चे उत्तरदायित्व—सम्पूर्ण दायित्ववाला संघ-शासन—जिसमें संरक्षण हों पर जो भारत के लिए हितकारी हों, विचार करने और लेने आ रहा हूँ। मैंने समय-असमय कहा है कि जो भी संरक्षण आवश्यक हो उसपर मैं विचार करूँगा। मैं अध्यापक लीस-स्मिथ अथवा अन्य किसी के इस विचार से सहमत नहीं हूँ कि इस विधान-रचना के काम में इतने वर्ष—तीन—वर्ष लगने चाहिएँ। उनके खयाल से प्रान्तीय स्वराज्य को १८ मास लगेंगे। मेरी मूर्खता कहती है कि इस दीर्घकाल की जरूरत नहीं। जब लोग संकल्प कर लें,

पार्लमेण्ट संकल्प कर ले, मन्त्री-गण संकल्प कर लें, और यहाँ का लोकमत संकल्प कर ले तो इन बातों में देर नहीं लगा करती। मैंने देखा है कि जब एकचित्त से विचार किया गया है तो इन बातों में समय नहीं लगा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि इस मामले मे एकचित्त से विचार नहीं हो रहा है। अलग-अलग विभाग, अपने-अपने ढङ्ग से और सभी शायद विरोधी दिशाओं में, काम कर रहे हैं। जब ऐसी बात है तो मुझे निश्चय प्रतीत होता है कि इस वादविवाद के पश्चात् भी केन्द्रस्थ दायित्व मिलना तो दूर रहा, इस परिषद् से कोई दूसरा तथ्यपूर्ण परिणाम भी नहीं निकलनेवाला है। मुझे यह देख कर पीड़ा होती है, आघात पहुँचाता है कि ब्रिटिश मन्त्रियों का, राष्ट्र का और यहाँ आये हुए इन सब भारतीयों का इतना बहुमूल्य समय व्यर्थ गया। मुझे भय है कि इस प्राणवायु की पिचकारी से भी कोई लाभ नहीं होगा। मैं यह नहीं कहता कि और कुछ नहीं तो प्रान्तीय स्वराज्य ही हमारे शिर पर थोप ही दिया जायगा।

दमन का असर

मुझे इस परिणाम का तो वास्तव में भय नहीं है। मुझे भय तो इससे कहीं अधिक भयानक चीज का है। वह यह कि सिवाय भयंकर दमन के भारत के और कुछ भी पल्ले पड़नेवाला नहीं है। मुझे उस दमन की फरयाद नहीं है। दमन से तो

हमारा भला ही होगा। यदि दमन ठीक समय पर हो तो मैं तो उसे भी इस परिषद् का बहुत बढ़िया नतीजा समझूँगा जो देश अपने ध्येय की ओर निश्चित संकल्प के साथ बढ़ रहा हो ऐसे किसी भी देश को दमन से कभी कोई हानि नहीं हुई। ऐसे दमन से सचमुच प्राणवायु का संचार होता है, अध्यापक लोस-स्मिथ की पिचकारी से नहीं।

परन्तु मुझे डर इस बात का है कि जिस पतले धागे से मैंने पुन. अंग्रेजों और अंग्रेज मंत्रियों से सहयोग का नाता बाँधा था वह टूटता दिखाई देता है, मुझे फिर से अपने-आपको कट्टर असहयोगी और सविनय अवज्ञाकारी घोषित करना पड़ेगा। मुझे वहाँ के करोड़ों मनुष्यों को असहयोग और आज्ञाभंग का सन्देश फिर से देना पड़ेगा। भले ही भारत पर फिर कितने ही वायुयान क्यों न मँडरायें और भारत में कितनी ही सैनिक मोटरें क्यों न भेज दी जायँ। इनसे कुछ होना जाना नहीं है। आपको मालूम नहीं है कि आज नन्हें-नन्हें बच्चों पर भी इन चीजों का कोई असर नहीं होता। हम उन्हें सिखाते हैं जब तुम्हारे चारों ओर गोलियों की वर्षा हो रही हो तो तुम हर्षोन्मत्त होकर नाचो मानो पटाखे छूट रहे हैं। हम उन्हें देश के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाते हैं। मैं निराश नहीं हूँ। मैं नहीं समझता कि यहाँ कुछ न हुआ तो देश में अराजकता फैल जायगी। मेरा यह ख़याल नहीं है। जब

तक कॉंग्रेस शुद्ध रहेगी और भारत की चारों दिशाओं में अहिंसा का बोलवाला रहेगा तबतक अराजकता नहीं होगी। मुझे बहुधा कहा जाता है कि हिंसावाद की ज़िम्मेवारी कॉंग्रेस के सिर पर है। परन्तु मेरे पास इस बात के लिए प्रमाण हैं कि कांग्रेस के अहिंसात्मक ध्येय ने ही अवतक हिंसात्मक शक्तियों को रोक रक्खा है। मुझे खेद है कि अवतक हमें पूरी सफलता नहीं मिली है, परन्तु समय पाकर हमको सफलता की आशा है। यह बात नहीं है कि हिंसावाद से भारत को स्वाधीनता मिल जायगी। मैं तो स्वतंत्रता वैसी ही चाहता हूँ जैसी श्री जयकर चाहते हैं, बल्कि मैं उनसे अधिक सम्पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता हूँ। मैं सर्व-साधारण के लिए पूरी आज़ादी चाहता हूँ मैं जानता हूँ हिंसावाद से सर्व-साधारण का कोई लाभ नहीं हो सकता। सर्व-साधारण मूक और निःशस्त्र हैं। उन्हें मारना नहीं आता। मैं व्यक्तियों की बात नहीं करता, परन्तु भारत के सर्व-साधारण की गति इस दिशा में कभी नहीं रही।

सच्चा उत्तरदायित्व

जब मैं ग़रीबों का स्वराज्य चाहता हूँ तो मुझे मालूम है कि हिंसावाद से कोई लाभ नहीं। अतः महासभा एक ओर तो ब्रिटिश सत्ता और उसकी ओर से क़ानून की आड़ मे होनेवाले हिंसावाद से लोहा लेगी और दूसरी ओर युवकों के ग़ैर-क़ानूनी आतंकवाद का विरोध करेगी। मेरे

ख़याल में इन दोनों के बीच का रास्ता उस सहयोग के द्वार का था जो लार्ड अर्विन ने ब्रिटिश राष्ट्र के तथा मेरे लिए खोला था। उन्होंने यह पुल बनाया और मैंने समझा उस पर से सकुशल पार हो जाऊँगा। मेरा रास्ता सुरक्षित था और मैं अपना सहयोग प्रदान करने को आ पहुँचा। परन्तु अध्यापक लीस-स्मिथ, सर तेज बहादुर सप्रू और श्री शास्त्रीजी ने कुछ भी कहा हो, इनके ध्यान में जो सीमित केन्द्रीय दायित्व है उससे मेरा समाधान नहीं होगा।

आप सब जानते हैं, मैं तो ऐसा केन्द्रस्थ दायित्व चाहता हूँ जिससे सेना और अर्थ का नियंत्रण मेरे हाथ में आ जावे। मुझे मालूम है कि वह चीज़ मुझे यहाँ अभी नहीं मिलेगी और न कोई भी अंग्रेज आज वह चीज देने को तैयार है। इसीसे मैं जानता हूँ कि मझे वापिस भारत जाकर देश को तपस्या के मार्ग पर अग्रसर होने का निमन्त्रण देना पड़ेगा। मैंने अपनी स्थिति पूरी तरह साफ कर देने की इच्छा से ही इस वाद-विवाद में भाग लिया है। प्रान्तीय स्वराज्य के विषय में मैं जो बात घरू तौर पर मित्रों से कहता रहा था वही बात आज इस परिषद् में मैंने खुले तौर पर कहदी है। मैंने आपसे यह भी कह दिया है कि प्रान्तीय स्वराज्य का मैं क्या अर्थ समझता हूँ और मुझे किस चीज से वस्तुतः सन्तोष होगा। अन्त में मैं कह देना

चाहता हूँ कि मैं और सर तेजबहादुर सप्रू तथा अन्य सदस्य एक ही नाव में बैठे हैं। मेरा विश्वास है कि जबतक सच्चा केन्द्रीय दायित्व न हो अथवा केन्द्र इतना कमज़ोर न कर दिया जावे कि प्रान्त जो चाहे उससे करालें तबतक सच्चा प्रान्तीय स्वराज्य होना असम्भव है। मुझे मालूम है आज आप इतना करने के लिए तैयार नहीं हैं। मैं जानता हूँ कि संघ-शासन के स्थापित होने पर यह परिषद् कमज़ोर केन्द्र रखना पसन्द नहीं करेगी, इसकी कल्पना तो मज़बूत केन्द्र की है।

परन्तु एक ओर विदेशी सत्ता द्वारा शासित बलिष्ट केन्द्र और दूसरी ओर बलिष्ट प्रान्तीय स्वराज्य—ये दोनों बातें एक साथ नहीं मिल सकती। फिर भी मैं महसूस करता हूँ कि प्रान्तीय स्वराज्य और दायित्वपूर्ण केन्द्रीय शासन असल में साथ-साथ चलने वाले हैं। फिर भी मैं कहता हूँ कि कि पुन. विचार के लिए मैंने अपने मस्तिष्क का द्वार बन्द नहीं कर लिया है। यदि मुझे कोई समझा दे कि यह प्रान्तीय स्वराज्य वैसा ही है जिसकी मैंने बंगाल के उदाहरण में कल्पना की है तो मैं उसे हृदय से लगा लूँगा।

[११]

हमारी बात

बहुमत का नियम

मैं नहीं समझता कि इस समय मैं जो कुछ कहूँगा, इससे प्रधान मण्डल के निर्णय पर कुछ असर पड़ना सम्भव है। बहुत करके वह निर्णय हो भी चुका है। लगभग एक पूरे द्वीप की स्वतन्त्रता का प्रश्न केवल दलीलों अथवा सलाह-मशविरे से कदाचित ही सम्भव हो सकता है। सलाह-मशविरे का भी अपना हेतु होता है, और वह भी अपना हिस्सा पूरा करता है, किन्तु वह ख़ास-ख़ास अवस्थाओं में ही। बिना ऐसी अवस्था के सलाह-मशविरे से कुछ नतीजा नहीं निकलता। किन्तु मैं इन सब बातों में नहीं जाना चाहता। प्रधान मन्त्री महोदय, मैं तो, आपने इस परिषद् की प्रारम्भिक बैठक में जो शर्तें पढ़ कर सुनाई थीं यथासम्भव उनकी हद में ही रहना चाहता हूँ। इसलिए सब से पहले तो मैं इस परिषद् के सामने पेश हुई रिपोर्टों के सम्बन्ध में ही दो शब्द कहूँगा। आप इन रिपोर्टों में देखेंगे कि अधिकांश में यह कहा गया है कि अमुक-अमुक बड़ी बहुमति का मत है, कुछने इसके विपरीत मत प्रदर्शित

किया है, इत्यादि। जिन पत्नों ने विरोधी मत दिया है, उनके नाम नहीं दिये गये हैं। जब मैं भारत में था, तब मैंने सुना था और मैं यहाँ आया तब मुझ से कहा गया था, कि बहुमत के सामान्य नियम से कोई भी निर्णय न किया जायगा। और इस बात का उल्लेख मैं यहाँ यह शिकायत करने के लिए नहीं करता कि वे रिपोर्ट इस तरह तैयार की गई हैं, मानो सारा काम बहुमति के नियम से ही किया गया हो।

किन्तु इस बात का उल्लेख मुझे इसलिए करना पड़ा है कि इन अधिकांश रिपोर्टों में आप देखेंगे कि एक विरुद्ध मत लिखा गया है, और अधिकाँश जगहों में यह विरोध दुर्भाग्य से मेरा है। प्रतिनिधि बन्धुओं की राय से मतभेद प्रकट करते हुए मुझे प्रसन्नता न हुई थी, किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि मैं यह मतभेद प्रकट न करूँ तो मैं महासभा का सच्चा प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता।

एक बात और है, जो मैं इस परिषद् के ध्यान में लाना चाहता हूँ और वह यह कि महासभा के इस मतभेद का क्या अर्थ है? संघ विधायक समिति की एक प्रारम्भिक बैठक में मैंने कहा था कि महासभा, भारत की ८५ प्रतिशत से अधिक आबादी अर्थात् मूक श्रमिकवर्ग, और अधपेट रहनेवाले करोड़ों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। किन्तु मैंने तो आगे जाकर यह भी कहा है कि यदि महाराजागण

मुझे क्षमा करें, तो वह तो अपने सेवा के अधिकार से राजाओं की; उसी तरह जमींदारों और शिक्षित वर्ग की भी प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मैं उस दावे को फिर पेश करता हूँ और इस समय उस पर विशेष जोर देना चाहता हूँ।

महासभा भारत की प्रतिनिधि है

इस परिषद् के दूसरे सब पक्ष खास-खास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये हैं। अकेली महासभा ही सारे भारत की और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। महासभा कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं है; किसी भी शकल या रूप में वह सब प्रकार की साम्प्रदायिकता की कट्टर शत्रु है। उसके मन में जाति, रंग अथवा सम्प्रदाय का कोई भेद नहीं है; उसके द्वार सब के लिए खुले हैं। सम्भव है कि उसने अपने ध्येय को सदैव पूरा न किया हो। मैंने मनुष्य द्वारा संस्थापित एक भी ऐसी संस्था नहीं देखी जिसने अपने ध्येय को सदैव सर्वथा पूरा किया हो। मैं जानता हूँ कि कई बार महासभा असफल हुई है। इसके आलोचकों की जानकारी के अनुसार तो वह इससे भी अधिक बार असफल हुई होगी। किन्तु कटु-से-कटु आलोचक को यह तो स्वीकार करना ही होगा, और उन्होंने स्वीकार किया भी है कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा दिन-प्रतिदिन विकसित होती जानेवाली संस्था है, उसका सन्देश भारत के दूराति-दूर गाँवों में पहुँचाया गया है और अवसर दिये जाने पर

वह देश के ७,००,००० गाँवों मे रहनेवाली सर्व-साधारण जनता पर के अपने प्रभाव का परिचय दे चुकी है।

और फिर भी मैं देखता हूँ कि यहाँ महासभा को अनेक पक्षो में से एक पक्ष गिना जाता है। मैं इसकी परवा नहीं करता, मैं इसे महासभा के लिए कुछ आपत्तिरूप नही मानता, किन्तु जो कार्य करने के लिए हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं, उसके लिए आपत्तिरूप अवश्य मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं ब्रिटिश राजनीतिज्ञो और ब्रिटिश मन्त्रियो को यह विश्वास करा सकता होता कि महासभा अपने निश्चय का पालन कराने में समर्थ है, तो कितना अच्छा होता। महासभा सम्पूर्ण भारत में व्याप्त और सब प्रकार के साम्प्रदायिक भेद भाव से मुक्त एकमात्र राष्ट्रीय संस्था है। जिन अल्प-संख्यक जातियों ने यहाँ अपनी माँगे पेश की हैं, और जो अथवा जिन की ओर से हस्ताक्षर करने वाले भारत की ४६ प्रतिशत आबादी के प्रतिनिधि होने का—मेरे मत से अनुचित—दावा करते हैं, महासभा उन अल्प-संख्यक जातियों की भी प्रतिनिधि है ही। मैं कहता हूँ कि महासभा इन सब अल्पसंख्यक जातियो की प्रतिनिधि होने का दावा करती है।

महासभा का यह दावा यदि स्वीकार कर लिया गया होता तो आज स्थिति कितनी भिन्न होती। मैं अनुभव करता हूँ कि शान्ति के लिए और इस परिषद् में बैठे हुए अंग्रेज

तथा भारतोय स्त्री-पुरुष दोनों के प्रिय उद्देश सिद्ध करने के लिए मैं महासभा का दावा विशेप आग्रह के साथ पेश करता हूँ। मैं यह इस कारण से कहता हूँ कि महासभा वलवान् संस्था है, महासभा एक ऐसी संस्था है, जिस पर प्रतिद्वन्द्वी सरकार चलाने अथवा चलाने का विचार रखने का आरोप लगाया गया है, और एक तरह से मैं इस आरोप का समर्थन कर चुका हूँ। यदि आप यह समझ लें कि महासभा का तन्त्र किस तरह चलता है, तो जो संस्था प्रतिद्वन्द्वी सरकार चला सकती है, और वता सकती है कि अपने पास किसी भी प्रकार का सैनिक बल न होते हुए भी विपम-संयोगों मे भी वह ऐच्छिक शासन तन्त्र चला सकती है, तो आप उसका स्वागत करेंगे।

किन्तु नहीं, यद्यपि आपने महासभा को आमन्त्रित किया है, फिर भी आप उसका अविश्वास करते हैं। यद्यपि आपने उसे आमन्त्रित किया है, फिर भी आप सारे भारत की ओर से बोलने के उसके दावे को अस्वीकृत करते हैं। अवश्य ही संसार के इस किनारे पर वैठे हुए आप लोग इस दावे का विरोध कर सकते हैं, और यहाँ मै इस दावे को साबित नहीं कर सकता। फिर भी आप मुझे उसे दृढता से पेश करते हुए देखते हैं, इसका कारण यह है कि मेरे सिर पर जबर्दस्त जिम्मेदारी मौजूद है।

सलाह-मशविरे का रास्ता-

महासभा बाग़ी-मनोवृत्ति की प्रतिनिधि है। मैं जानता हूँ कि सलाह-मशविरे के ज़रिये भारत को कठिनाइयों का सर्व-सम्मत हल निकालने के लिए निमन्त्रित इस परिषद् में 'बाग़ी' शब्द का उच्चार न करना चाहिए। एक के बाद एक अनेक वक्ताओं ने खड़े हो कर कहा है कि भारत को अपनी स्वतन्त्रता सलाह-मशविरे और दलीलों से ही प्राप्त करनी चाहिए। और ग्रेटब्रिटेन यदि भारत की माँगों को दलीलों से ही स्वीकार करेगा, तो इसमें उसका अर्थात् ग्रेटब्रिटेन का अत्यन्त गौरव समझा जायगा किन्तु महासभा का मत सर्वथा ऐसा ही नहीं है। महासभा के पास दूसरा एक और मार्ग है जोकि आपको अप्रिय है।

पुराना रास्ता

मैंने कई वक्ताओं के भाषण सुने हैं, और प्रत्येक वक्ता की बात को मैंने जहाँतक सम्भव हो सका है पूरे ध्यान से और आदरपूर्वक समझने का प्रयत्न किया है। कई वक्ताओं ने कहा है कि यदि भारत में कानूनभंग, बलवा और हिंसक अत्याचार आदि की प्रवृत्ति पैदा हो जाय तो कितनी भयङ्कर मुसीबत आ पड़ेगी। मैं इतिहासज्ञ होने का ढोंग नहीं करता, किन्तु एक स्कूल के विद्यार्थी की तरह मुझे इतिहास के पर्चे में भी पास करना पड़ा था। मैंने उनमें पढ़ा कि इतिहास के पृष्ठ पर

स्वतंत्रता के लिए लड़ने वालों के रक्त का लाल धब्बा लगा हुआ है। मेरी जानकारी में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं, जिसमें राष्ट्रो ने अपार कष्ट सहे बिना स्वतन्त्रता प्राप्त की हो। मेरे मत से, स्वतंत्रता के और स्वाधीनता के अन्ध-प्रेमियों ने खूनी का खञ्जर विष का प्याला, बन्दूक की गोली, भाला तथा संहार के इन सब शस्त्रास्त्रों और साधनों का आजतक उपयोग किया है। फिर भी इतिहासकारों ने उसकी निन्दा नहीं की है। मैं हिंसावादियो की वकालत करने के लिए खड़ा नहीं हुआ हूँ। श्री राजमन्त्री ने हिंसा-वादियो की चर्चा की, और उसमें कलकत्ता-कार्पोरेशन को भी सम्मिलित किया। उन्होने जब कलकत्ता कार्पोरेशन की एक घटना का उल्लेख किया, तो उससे मुझे चोट पहुँची। वे यह बात कहना भूल गये कि कलकत्ता के मेयर ने, जो स्वयं तथा कार्पोरेशन अपने महासभावादी सदस्यों के कारण जिस भूल में फँस गये थे, उसके लिए मुआवाजा दिया है।

जो महासभावादी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा को उत्तेजन देते हैं, मैं उनकी वकालत नहीं करता। महा-सभा के ध्यान में उक्त घटना के आते ही उसने उसके प्रति-कार का प्रयत्न आरम्भ किया। उसने तुरन्त ही कलकत्ता के मेयर से इस घटना का विवरण माँगा और मेयर सज्जन हैं, इसलिए उन्होंने तुरन्त ही अपनी भूल स्वीकार कर ली और बाद में भूल सुधार के लिए कानून से जो बात संभव

थी उसका अमल किया। इस घटना पर बोल कर मुझे इस परिषद् का अधिक समय नहीं लेना चाहिए। कलकत्ता कार्पोरेशन की ओर से चलनेवाली चालीस पाठशाला के विद्यार्थी जो गीत गाते बताये जाते हैं, उसका भी श्री गज़-नवी ने उल्लेख किया है। उनके भाषण में और भी अनेक ऐसी भ्रमपूर्ण बातें थीं जिनके सम्बन्ध में मैं बोल सकता हूँ; किन्तु उन पर बोलने की मेरी इच्छा नहीं है। कलकत्ता के उच्च कार्पोरेशन के सम्मान और सत्य के प्रति आदर के लिए तथा जो लोग अपना बचाव करने के लिए यहाँ उपस्थित नहीं हैं, उनकी ओर से मैं ये दो प्रकट एवम् स्पष्ट उदाहरण यहाँ दे रहा हूँ। मैं एक क्षण के लिए भी यह बात नहीं मानता कि यह गीत कलकत्ता कार्पोरेशन की पाठशालाओं में कार्पोरेशन की जानकारी में सिखाया जाता था। मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि गत वर्ष के भयङ्कर दिनों में ऐसी कई बातें की गई थीं जिनके लिए हमें खेद है और जिनके लिए हमने मुआवज़ा दिया है।

यदि कलकत्ते में हमारे बालकों को वह गीत गाना सिखाया गया हो, जो श्री गज़नवी ने गाया है, तो मैं उनकी ओर से क्षमा माँगने के लिए यहाँ मौजूद हूँ। किन्तु इतना मैं चाहूँगा कि इन पाठशालाओं के शिक्षकों ने यह गीत कार्पोरेशन की जानकारी और प्रोत्साहन से सिखाया है, यह बात साबित की जाय। महासभा के विरुद्ध इस प्रकार

के आक्षेप अगणित बार लगाये जा चुके हैं और अगणित बार महासभा उनका उत्तर दे चुकी है, फिर भी इस अवसर पर मैंने इसका उल्लेख किया है। वह भी यह बताने के ख़याल से किया है कि स्वतन्त्रता के लिए लोग लड़े हैं, उन्होंने अपने प्राण गँवाये हैं, और जिन्हे पदच्युत करना चाहते थे उन्हे मारा है और उनके हाथों मारे गये हैं।

नवीन मार्ग

अब महासभा रंगमञ्च पर आती है; और इतिहास में अपरिचित एक नवीन उपाय—सविनय भंग खोज निकालती है, और उसका अनुकरण करती आती है। किन्तु मेरे सामने फिर एक पत्थर की दीवार आकर खड़ी होती है, और मुझसे कहा जाता है कि दुनिया की कोई भी सरकार इस उपाय,—इस पद्धति को सहन नहीं कर सकती। अवश्य ही सरकार खुली बग़ावत को सहन नहीं कर सकती किसी भी सरकार ने सहन नहीं किया है। सविनय भंग को भी कोई सरकार सहन नहीं कर सकती है। किन्तु सरकारों को इस शक्ति के आगे झुकना पड़ा है, जिस प्रकार कि ब्रिटिश सरकार को आज से पहले करना पड़ा है। और महान् डच सरकार को भी आठ वर्ष की कसौटी के बाद अनिवार्य स्थिति के सामने झुकना पड़ा था। जनरल स्मट्स बहादुर सेनापति हैं, महान् राजनीतिज्ञ हैं, और अत्यन्त कठिन काम लेने वाले भी हैं। फिर भी जो निरपराध स्त्री-पुरुष

केवल अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए लड़ते थे, उन्हें मार डालने की कल्पना मात्र से वे काँप उठे थे। और सन १९०८ में जिस चीज़ के स्वयं कभी न देने की उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, और जिसमें जनरल बोथा का उन्हें सहारा था, वही चीज़ उन्हे, सन् १९१४ में इन सत्याग्रहियों को पूरी-पूरी तरह तपाने के बाद, देनी पड़ी। भारत में लार्ड चेम्सफोर्ड को यही करना पड़ा था। बम्बई के गवर्नर को बोरसद और बारडोली मे यही करना पड़ा था। प्रधान-मन्त्री महोदय, मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि इस शक्ति का मुकाबला करने का समय अब चला गया है; और इनके आगे आज पसन्दगी पड़ी है। जुदे मार्ग ग्रहण की बात है, इस बोझ से मैं दबा जाता हूँ। अपने देश के भाई-बहिनों और उसी प्रकार बालकों को भी यदि इस अग्नि-परीक्षा में डाले विना कुछ हो सकता हो तो मैं गाढ़ निराश में भी आशा रक्खूंगा। अपने देश के लिए सम्मानपूर्ण समझौता प्राप्त करने के लिए शक्ति भर सब प्रकार के प्रयत्न कर छोडूंगा। इन सबको इस प्रकार के संग्राम में फिर उतारने में मुझे सुख अथवा आनन्द नहीं है; किन्तु यदि हमारे भाग्य में अधिक अग्निपरीक्षा लिखी ही हो, तो मैं इसमें बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रवेश करूँगा, और मुझे बड़े-से-बड़ा आश्वासन यह है कि मुझे जो सत्य प्रतीत होता है, वही मैं करता हूँ; देश को जो सत्य प्रतीत होता है, वही

वह करता है; और देश को यह जानकर अधिक सन्तोष होगा कि वह प्राण लेता तो नहीं, पर देता है; वह अंग्रेज़ लोगों को सीधा कष्ट नहीं देता, वरन स्वयं कष्ट सह लेता है। प्रोफ़ेसर गिलवर्ट मरे ने मुझसे कहा था—उनका यह वचन मैं कभी न भूलूँगा, मैं केवल उसका अनुवाद करता हूँ—कि 'आप एक क्षण के लिए भी यह नहीं मानते कि जब आपके हज़ारों देशबन्धु कष्ट सहन करते हैं, तब हम अंग्रेज़ लोग दुःखी नहीं होते, क्या हम इतने हृदय-शून्य हैं ?' मैं ऐसा नहीं मानता। मैं अवश्य जानता हूँ कि आप भी दुःखी होते हैं। किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप दुःखी हो, क्योंकि मुझे आपका हृदय पिघलाना है; और जब अपका हृदय पिघलेगा, तभी सलाह-मशविरे का उपयुक्त समय आवेगा। सलाह-मशविरे में सम्मिलित होने के लिए, इतनी दूर आया हूँ, वह इसलिए कि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि आपके देशबन्धु लार्ड इर्विन ने अपने आर्डिनेन्सो के जरिये हमें खूब तपा देखा है, उन्होने पूरा सबूत पा लिया है, कि भारत के हज़ारो स्त्री-पुरुष और वालकों ने कष्ट सहन किया है और आर्डिनेन्स हों तो क्या, लाठी वरसें तो क्या, आगे बढ़ता हुआ तूफ़ान इनसे किसी से भी रुकनेवाला नहीं, आज़ादी के लिए तड़पते भारत के स्त्री-पुरुषों के हृदय में जो प्रबल भावनाएँ जागृत हो गई हैं, उनके प्रवाह को राका नहीं जा सकता।

क़ीमत

अभी समय बिलकुल गया नहीं है; इसलिए मैं चाहता हूँ कि महासभा जिस बात के लिए खड़ी है आप उसे समझें। मेरा जीवन आपके हाथ में है। कार्य-समिति के, महासमिति के सब सदस्यों का जीवन आपके हाथ में है। किन्तु स्मरण रखिए कि इन करोड़ों मूक प्राणियों का जीवन भी आपके हाथ में है। मेरा बस चले तो मैं इन प्राणियों को नहीं होम देना चाहता। इसलिए स्मरण रखिए कि यदि संयोग से मैं कोई सम्मानपूर्ण समझौता करा सकूँ, तो उसके लिए कितना भी बलिदान क्यों न करना पड़े मैं उसे बहुत न समझूँगा। महासभा के हृदय में यही भावना काम कर रही है, कि भारत को सच्ची स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उसकी यह भावना यदि मैं आप में भर सकूँ, तो आप मुझ में समझौते की बड़ी-से-बड़ी भावना भरी पावेंगे। स्वतन्त्रता को आप कुछ भी नाम दें; गुलाब को दूसरा कोई भी नाम दें, तो भी वह उतनी ही सुगन्धि देगा; किन्तु मैं जो चाहता हूँ वह स्वतन्त्रता का असली गुलाब होना चाहिए, नकली नहीं। यदि आपके और उसी तरह महासभा के; इस परिषद् के और उसी तरह अंग्रेज जनता के मन में इस शब्द का एक ही अर्थ हो तो आप समझौते के लिए पूरा-पूरा अवसर पा सकेंगे; महासभा को समझौते के लिए सदैव तत्पर पावेंगे। किन्तु जब तक यह एकमत नहीं

होता, जब तक जिस शब्द का आप, मैं और सब प्रयोग करते हैं, उसकी एक ही व्याख्या, एक ही अर्थ नहीं होता, तबतक कोई समझौता सम्भव नहीं। हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, उनकी हम प्रत्येक के मन में जुदी-जुदी व्यख्या हो तो समझौता हो ही किस तरह सकता है? प्रधान मन्त्री महोदय, मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि ऐसा आधार ढूँढ निकालना असम्भव है जहाँ कि आप समझौते की भावना का प्रयोग कर सकें। और मुझे अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन सब उकता देनेवाले सप्ताहों मे हम जिन शब्दो का प्रयोग कर रहे थे, उनकी कोई सर्व-सम्मत व्याख्या मैं अभी तक ढूँढ न सका।

हमारा ध्येय

गत सप्ताह एक शङ्काशील सज्जन ने मुझे लन्दन का क़ानून बताकर कहा—"अपने 'उपनिवेश' (Dominion) की परिभाषा देखी है?" मैंने 'उपनिवेश' की व्याख्या पढ़ी और उसमे यह देखकर कि 'उपनिवेश' शब्द की पूरी व्याख्या की गई है और सामान्य व्याख्या के सिवा विशेष व्याख्या की गई है, स्वाभावतः ही मै किसी उलझन मे नहीं पड़ा अथवा मुझे कुछ आघात न पहुँच सका। इसमें इतना ही कहा गया था कि 'उपनिवेश' शब्द में आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, कनाड़ा आदि और अन्त में आयरिश फ्री स्टेट का समावेश होता है।" मेरा खयाल नहीं है कि

मैंने उसमें ईजिप्त का नाम देखा हो। फिर उक्त सज्जन ने कहा—"आपके 'उपनिवेश' का क्या अर्थ है, यह आपने देखा ?" मुझपर इसका कुछ असर न पड़ा। मेरे औपनिवेशिक अथवा पूर्ण स्वराज्य का क्या अर्थ किया जाता है, मुझे इसकी परवा नहीं। एक तरह से मेरा हृदय हलका हो गया।

मैंने कहा,— मैं अब 'औपनिवेशिक झगड़े से वरी हूँ, क्योंकि मैं उससे अलग हो गया हूँ। मुझे तो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए। और फिर भी कई अंग्रेजों ने कहा—"हाँ, तुम्हे पूर्ण स्वतन्त्रता मिल सकती है, किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है ?" और फिर हम जुदी-जुदी व्याख्याओं पर आ गये।

आपके एक बड़े राजनीतज्ञ मेरे साथ बातचीत करते थे। उन्होंने कहा—"सच कहता हूँ, मैं नहीं जानता था कि पूर्ण स्वतन्त्रता का आप यह अर्थ करते हैं।" उन्हे जानना चाहिए था, फिर भी वे नहीं जानते थे और वे क्यों नहीं जानते थे, वह मैं आपको बतलाता हूँ। जब मैंने उनसे कहा कि "मैं साम्राज्य में साझेदार नहीं रह सकता" तब उन्होंने कहा—"अवश्य, यह तो इसका तर्क सिद्ध अर्थ है।" मैंने कहा—"पर मुझे तो सझेदार होना है। मुझे यदि जबर्दस्ती साझेदार बनाया जाय, तो मैं हर्गिज न बनूँगा; मुझे तो स्वेच्छा से ग्रेट ब्रिटेन का साझेदार बनना है, मुझे अंग्रेज

जनता का साझेदार बनना है। किन्तु जो स्वतन्त्रता अंग्रेज जनता भोगती है, उसीका मुझे भोग करना है, और मैं इस साझेदारी में केवल भारत के अथवा एक-दूसरे के लाभ के लिए शामिल नहीं होना चाहता; मैं यह साझेदारी इसलिए चाहता हूँ कि संसार के बुभुक्षित लोग जिस बोझ के नीचे कुचले जा रहे हैं, वे उसके भार से मुक्त हों।"

इस बात-चीत को हुए दस-बारह दिन हुए। यह बात विचित्र तो मालूम होगी, किन्तु मुझे एक दूसरे अंग्रेज की तरफ से चिट्ठी मिली। इन्हें आप भी पहचानते हैं, और उनके प्रति आदर-भाव रखते हैं। अन्य अनेक बातों के साथ उन्होंने लिखा है "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य-जाति की सुख शान्ति-का आधार अपनी मित्रता पर निर्भर है," और मानों मैं न समझता होऊँ इस तरह वे लिखते हैं—"आपकी और मेरी जनता की मित्रता पर।" आगे उन्होंने जो लिखा है, वह भी मुझे आपको पढ़ सुनाना चाहिए—"और सच्चे अंग्रेज सब भारतियों में केवल आपको ही चाहते हैं और समझते हैं।"

उन्होंने कोई शब्द खुशामद में बरबाद नहीं किया है, और मैं नहीं समझता कि उन्होने अन्तिम वाक्य मेरी खुशामद के लिए लिखा है। मैं किसी की खुशामद में नहीं आ सकता। इस चिट्ठी में ऐसी कई बातें हैं,

जो यदि मैं आपको सुनाऊँ तो कदाचित आप इस वाक्य का अर्थ अधिक समझ सकें। किन्तु मैं आपसे इतना ही कहता हूँ कि अन्तिम वाक्य उन्होंने मुझे खुद को ध्यान में रखकर नहीं लिखा है। मैं किसी गिनती में नहीं हूँ। और मैं जानता हूँ कि कई अंग्रेज़ों की दृष्टि में मैं किसी गिनती में नहीं हूँ; किन्तु कुछ अंग्रेज मुझे किसी गिनती में समझते हैं, क्योंकि मैं एक राष्ट्र के, एक प्रभावशाली संस्था के, प्रतिनिधि की हैसियत से आया हूँ, और इसीलिए उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

किन्तु प्रधान मन्त्री महोदय, यदि मैं कोई भी व्यावहारिक आधार पा सकूँ तो समझौते के लिए काफ़ी अवसर है। मैं मैत्री के लिए तरस रहा हूँ। मेरा कार्य गुलामों के मालिक और ज़ालिम की जड़ उखाड़ना नहीं है। मेरी नीति मुझे ऐसा करने से रोकती है, और आज महासभा ने मेरी तरह इस नीति को धर्म की तरह तो नहीं, किन्तु व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया है। क्योंकि महासभा का विश्वास है कि भारत के लिए—३५ करोड़ के राष्ट्र के लिए—यही योग्य और सर्वोत्तम मार्ग है।

हमारा शास्त्र

३५ करोड़ की आबादी के राष्ट्र को खूनी के खंजर की आवश्यकता नहीं, उसे तलवार, भाला अथवा गोली की आवश्यकता नहीं, उसे केवल अपने संकल्प की जरूरत

है; 'नहीं' कहने की शक्ति की आवश्यकता है, और वह राष्ट्र आज 'नहीं' कहना सीख रहा है।

किन्तु यह राष्ट्र करता क्या है? अंग्रेजों को एकदम अलग करता है? नहीं। उसका उद्देश्य आज अंग्रेजों का हृदय-परिवर्तन करना है। इंग्लैंड और भारत के बीच का यह बन्धन मैं तोड़ना नहीं चाहता, किन्तु उसका रूप बदलना चाहता हूँ। मैं उस गुलामी को पूर्ण-स्वतन्त्रता के रूप में बदलना चाहता हूँ। इसे आप पूर्ण स्वतन्त्रता कहें अथवा दूसरा कुछ भी नाम दें, मैं उस शब्द के लिए झगड़ने नहीं बैठूँगा। और यदि मेरे देशबन्धु उस शब्द को स्वीकार कर लेने के लिए मेरा विरोध करें, तो जबतक आपके सुझाये हुए शब्द में मेरे अर्थ का समावेश होता होगा, तबतक मैं इस विरोध को सहने के लिए भी समर्थ हो सकूँगा। इसलिए मुझे अगणित बार आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना पड़ता है कि जो संरक्षण आपने सुझाये हैं, वे सर्वथा असन्तोषजनक हैं। वे भारत के हित में नहीं हैं।

आर्थिक बन्धन

वाणिज्य और 'उद्योग-संघों' के तीन विशेषज्ञों ने अपने अपने जुदे तरीके से, अपनी विशेषज्ञता के अनुभव से बताया है कि जहाँ देश की ३० फीसदी आय गिरवी रखदी गई है, जिसके कि वापिस आने की कोई सम्भावना नहीं,

वहाँ किसी भी उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल के लिए देश का शासनतन्त्र चलाना असम्भव बात है। मेरी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी तरह, अपने प्रचुर ज्ञान से, उन्होंने बताया है कि इन आर्थिक संरक्षणों का भारत के लिए क्या अर्थ है। ये भारत को सर्वथा अपाहज अथवा अपंग बना देनेवाले हैं। इस परिषद् में आर्थिक संरक्षणों की चर्चा हुई है; किन्तु इसमें सेना—रक्षण—के प्रश्न का भी समावेश हो जाता है। फिर भी, यद्यपि मैं कहता हूँ कि जिस रूप में ये संरक्षण पेश किये गये हैं, उस रूप में वे असन्तोषजनक हैं; तथापि बिना किसी हिचकिचाहट के मैंने यह भी कहा है और बिना किसी हिचकिचाहट के फिर कहता हूँ कि जो संरक्षण भारत के लिए हितकर सिद्ध कर दिये जायँगे, उन्हें देने के लिए, उन्हें स्वीकार करने के लिए महासभा वचनबद्ध है।

संघ-विधायक समिति की एक बैठक में मैंने बिना किसी संकोच के इसी स्वीकृति का विस्तार किया था और कहा था कि ये संरक्षण ग्रेट-ब्रिटेन के लिए भी लाभप्रद होने चाहिएँ। अकेले भारत के लिए लाभप्रद और ग्रेट-ब्रिटेन के वास्तविक हित के लिए हानिकारक हों, ऐसे संरक्षण मुझे नहीं चाहिएँ। भारत के कल्पित हितों का बलिदान करना होगा। ग्रेट-ब्रिटेन के कल्पित हितों का बलिदान करना होगा। भारत के अवैध हितों का बलिदान करना होगा,

ग्रेट-ब्रिटेन के अवैध हितों का भी बलिदान करना होगा। इसलिए मैं फिर दुहराता हूँ कि यदि हम एक ही शब्द का एक ही सा अर्थ करते हों, तो मैं श्री जयकर के साथ, सर तेजबहादुर सप्रू के साथ और इस परिषद् में बोलनेवाले अन्य प्रसिद्ध वक्ताओं के साथ सहमत हो जाऊँगा।

इतने सब परिश्रम के बाद हम सब ठीक-ठीक एकमत पर आ गये हैं इस बात में मैं उनके साथ राजी हो जाऊँगा, किन्तु मेरी निराशा और मेरा दुःख यह है कि मैं इन शब्दों को इसी अर्थ में नहीं देख रहा हूँ। मुझे भय है कि संरक्षणों का श्री जयकर ने जो अर्थ किया है, वह मेरे अर्थ से जुदा है और उदाहरण के तौर पर, कौन जाने कदाचित सर सेम्यूएल होर के मन में उसका दूसरा ही अर्थ हो। सच पूछा जाय तो हम अभी अखाड़े में उतरे ही नहीं हैं। मैं इतने दिनों से वास्तव में अखाड़े में उतरने के लिए आतुर हूँ, तड़प रहा हूँ और मैंने सोचा—"हम अधिकाधिक निकट क्यों नहीं आवे, और हम अपना समय वाक्पटुता में, वक्तृत्व और वाद-विवाद तथा छोटी-छोटी बातों में विजय प्राप्त करने में क्यों बरबाद कर रहे हैं? भगवान् जानता है कि मुझे अपनी खुद की आवाज सुनने की जरा भी इच्छा नहीं है। ईश्वर जानता है कि किसी भी वाद-विवाद में भाग लेने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। मैं

जानता हूँ कि स्वतन्त्रता इससे कठिन वस्तु है, और मैं जानता हूँ कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता उससे भी अधिक कठिन है। हमारे सामने ऐसी समस्याएँ हैं, जो किसी भी राजनितिज्ञ को चक्कर में डाल सकती हैं। हमारे सामने ऐसी समस्याएँ हैं- जो अन्य राष्ट्रों के सामने न आई थीं, अथवा जिनका उन्हे हल न करना पड़ा था। किन्तु मैं उनसे हारता नहीं हूँ। भारत की आबोहवा में पले हुए लोग उनसे हार नहीं सकते। ये समस्याएँ हमारे साथ लगी हुई हैं, जिस प्रकार हमें अपने प्लेग को दूर करना है, हमें अपने मेलेरिया-ज्वर की समस्या को सुलझाना है; आपको जो न करना पड़ा, वह साँप, बिच्छू, बन्दर, बाघ और सिंह की समस्याओं का हल हमें करना है। हमें इन समस्याओं का हल करना है, क्योंकि हम उस आबहवा में पले हैं।

इनसे हम घबराते नहीं। कैसे भी क्यों न हो पर इन जहरीले कीड़े-मकौड़ों और तरह-तरह के जानवरों के प्रहारों का मुक़ाबला करते हुए भी हम अपने अस्तित्व को आज भी क़ायम रक्खे हुए हैं। इसी प्रकार इस समस्या का भी हम मुक़ाबला करेंगे और अन्ततोगत्वा कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेंगे। परन्तु आज तो आप और हम एक गोलमेज के आस-पास इसलिए एकत्र हुए हैं कि आपस में मिल-जुल कर कोई संयुक्त योजना ढूँढ निकालें,

जो कि अमल में लाई जा सके। कृपया विश्वास कीजिए कि मैं यहाँ जो आया हूँ वह समझौते के लिए ही आया हूँ। महासभा की ओर से पेश किये हुए अपने दावे में, जिसको मैं यहाँ दुहराना नहीं चाहता, मैं कोई कमी नहीं करता, न संघ-विधायक समिति में मुझे जो भाषण देने पड़े उनका एक भी शब्द ही मैं वापस लेता हूँ, फिर भी मै कहता हूँ कि ब्रिटिश कल्पनाशक्ति से जो भी कोई योजना या विधान तैयार हो सके, अथवा श्री शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री जयकर, श्री जिन्ना, सर मुहम्मद शफ़ी तथा इन जैसे दूसरे बहुत से विधान-विशारदों की कल्पनाशक्ति से जो कोई योजना तैयार हो सके उस सब पर विचार करने के लिए ही मैं यहाँ हूँ।

पारस्परिक विश्वास

मैं घबराऊँगा नहीं। और जबतक जरूरत होगी मैं यहीं बना रहूँगा, क्योंकि सविनय-अवज्ञा को मैं फिर से जारी नहीं करना चाहता। दिल्ली में जो अस्थायी सन्धि हुई थी उसे मैं स्थायी सन्धि के रूप में परिवर्तित करना चाहता हूँ। लेकिन ईश्वर के लिए मुझ, ६२ वरस के इस बूढ़े आदमी को, इसके लिए थोड़ा अवसर तो दो। मेरे लिए और जिस संस्था का मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ उसके लिए अपने हृदय में थोड़ा स्थान तो बनाओ। लेकिन उस संस्था पर आप विश्वास नहीं करते, हालाँ कि प्रत्यक्षतया मुझमें

आप विश्वास करते हुए भले ही जान पड़ें। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस संस्था से भिन्न न समझिए, जिसका कि मैं तो समुद्र में एक विन्दु के समान हूँ। मैं उस संस्था से हर्गिज़ बड़ा नहीं हूँ, जिससे कि मैं सम्बन्धित हूँ। मैं तो उस संस्था से कहीं छोटा हूँ—और, यदि आप मेरे लिए स्थान रखते हों, अगर मुझपर आप विश्वास करते हों, तो मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ कि आप महासभा पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नहीं। क्योंकि मेरे पास अपना कोई अधिकार नहीं है, सिवा उसके कि जो महासभा से मुझे मिला है। यदि आप महासभा की प्रतिष्ठा के अनुसार काम करेंगे तो अतङ्कवाद को आप नमस्कार कर लेंगे; तब, आतङ्कवाद को दबाने के लिए, आपको आतङ्कवाद की जरूरत नहीं पड़ेगी। आज तो अपको अपने अनुशासनयुक्त और सङ्गठित आतङ्कवाद से वहाँ पर मौजूद आतङ्कवादियो से लड़ना है, क्योंकि वास्तविकता से अथवा दैववाणी से आप अन्धों की तरह विमुख ही रहेंगे। क्या आप उस वाणी को न सुनेंगे, जो इन आतङ्कवादियों या क्रान्तिकारियो के रक्त से लिखी जा रही है? क्या आप यह नहीं देखेंगे कि हम जो रोटी चाहते हैं वह गेहूँ की बनी नहीं बल्कि स्वतंत्रता की रोटी चाहते हैं; और जबतक वह रोटी मिल नहीं जाती, वह आज़ादी मिल नहीं जाती, ऐसे

हज़ारों लोग आज मौजूद हैं, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही शान्ति से रहने ही देंगे ?

मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप उस दैववाणी को सुनें। मैं कहता हूँ कि जो राष्ट्र पहले ही अपने सन्तोष के लिए कहावत तक में मशहूर है उसके सन्तोष की आप परीक्षा न करें। हिन्दुओं की विनम्रता तो प्रसिद्ध ही है, पर मुसलमान भी हिन्दुओं के अच्छे या बुरे सम्बन्ध से बहुत-कुछ विनम्र बन गये हैं। और, हाँ, मुसलमानों का यह हवाला सहसा मुझे अल्पसंख्यकों की उस समस्या का स्मरण करा देता है, जो कि एक पेचीदा समस्या है। विश्वास कीजिए कि वह समस्या हमारे यहाँ मौजूद है और हिन्दुस्थान में जो बात मैं अक्सर कहा करता था उसे मैं भूल नहीं गया हूँ—उन शब्दों को यहाँ फिर से दुहराता हूँ—कि अल्प-सख्यकों की समस्या का जबतक हल नहीं हो जाता तबतक हिन्दुस्थान के लिए स्वराज्य नहीं है—हिन्दुस्थान के लिए आज़ादी नहीं है। मैं जानता हूँ कि मैं इस बात को महसूस करता हूँ, फिर भी जो मैं यहाँ आया हूँ वह सिर्फ इसी आशा से कि शायद 'अकस्मात् यहाँ मैं इसका कोई उपाय निकाल सकूं। आज भी इस बात से मैं बिलकुल नाउम्मीद नहीं हो गया हूँ कि एक-न-एक दिन अल्प-संख्यकों की समस्या का कोई-न-कोइ वास्तविक और स्थायी

हल मिल ही जायगा। जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है, उसीको मैं फिर से दुहराता हूँ कि, जबतक विदेशी शासन रूपी तलवार एक जाति को दूसरी जाति से और एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी से विभक्त करती रहेगी तबतक कोई भी वास्तविक स्थायी हल नहीं होगा, न इन जातियों के बीच स्थायी मैत्री ही होगी।

यदि कोई हल हुआ भी तो आखिर में और बहुत-से-बहुत, वह कागजी हल ही होगा। लेकिन जैसे ही आप उस तलवार को हटा लें कि वैसे ही घरेलू बन्धन, घरेलू-प्यार-मुहब्बत, संयुक्त उत्पत्ति का ज्ञान,- क्या आप समझते हैं कि इन सबका कोई असर न पड़ेगा?

क्या ब्रिटिश शासन से पहले, जबकि यहाँ किसी अंग्रेज की शक्ल तक दिखलाई नहीं पड़ती थी, हिन्दू और मुसलमान तथा सिक्ख हमेशा एक-दूसरे से लड़ते ही रहते थे? हिन्दू और मुसलमान इतिहासकारों के लिखे उस वक्त के जो गद्य-पद्य-वर्णन हमारे यहाँ मौजूद हैं, उनसे तो, इसके विपरीत यही प्रकट होता है कि आज की अपेक्षा उस समय हम कहीं शान्ति से रह रहे थे। और आज भी गाँवों में हिन्दू-मुसलमान कहाँ लड़ रहे है? उन दिनों तो वे एक-दूसरे से बिलकुल लड़ते ही नहीं थे। मौ० मुहम्मद अली, जो स्वयं थोड़े-बहुत इतिहासज्ञ थे, अक्सर यह बात कहा करते थे। मुझसे उन्होंने कहा था—"अगर

परमेश्वर"—उनके शब्दों में कहें तो "अल्लाह"—"मुझे ज़िन्दगी दे, तो मेरा इरादा है कि मैं भारत के मुसलमानी शासन का इतिहास लिखूँ। उस वक्त उन्हीं काग़ज़-पत्रों से, जिन्हें कि अंग्रेज़ों ने सुरक्षित रख रक्खा है, मैं दिखलाऊँगा कि औरंगज़ेब वैसा दुष्ट नहीं था कि जैसा, अगरेज़ इतिहासकारों ने उसे चित्रित किया है; और न मुग़ल शासन ही वैसा ख़राब था, जैसा कि अंग्रेज़ी इतिहास में हमें बतलाया गया है; इत्यादि-इत्यादि।" और यही बात हिन्दू-इतिहासकारो ने लिखी है। दरअसल यह झगड़ा बहुत पुराना नहीं है, बल्कि इस तीव्र लज्जा (पराधीनता) का ही समवयस्क है। मैं तो यह कहने का साहस करता हूँ कि अंग्रेज़ों के आगमन के साथ ही इसका जन्म हुआ है और जैसे ही यह सम्बन्ध—ग्रेट-ब्रिटेन और भारतवर्ष के बीच का यह दुर्भाग्यपूर्ण, कृत्रिम एवं अस्वाभाविक सम्बन्ध—स्वाभाविक सम्बन्ध के रूप में परिवर्तित हो जायगा, जबकि—यदि ऐसा हो सके कि—यह स्वेच्छीया भागीदारी का संबंध हो जायगा, कि जिसमें किसी भी पक्ष की इच्छा होने पर उसे छोड़ा या तोड़ा जा सके, तो आप देखेंगे कि हिंदू, मुसलमान, सिख, अंग्रेज़, अधगोरे, ईसाई, अछूत सब कैसे एक आदमी की तरह आपस में मिल जुल कर रहते हैं।

नरेशों के बारे में आज मैं अधिक नहीं कहना चाहता;

मगर मैं उनके और महासभा के साथ अन्याय करूँगा, यदि गोलमेज-परिषद् सम्बन्धी तो नहीं किन्तु नरेशों के साथ के अपने दावे को पेश न करूँ। संघ-शासन में शामिल होने के लिए वे अपनी जो शर्तें पेश करें उसकी उन्हें छूट है। परन्तु मैंने उनसे प्रार्थना की है कि वे भारत के अन्य भागों में रहनेवालों के लिए भी मार्ग सुगम कर दें, इसलिए सिर्फ उनके कृपापूर्ण और गम्भीर विचार के लिए मैं कुछ सूचनायें भर कर सकता हूँ। मैं समझता हूँ कि यदि वे समस्त भारत की संयुक्त सम्पत्ति के रूप में कुछ मौलिक अधिकारों को, फिर वे कुछ भी क्यों न हों, स्वीकार करलें, और उस स्थिति को स्वीकार कर न्यायालय द्वारा—और वह न्यायल भी तो उन्हीं के द्वारा बना हुआ होगा—उनकी जाँच होने दें, और अपने प्रजाजनों की ओर से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को—केवल सिद्धान्त को ही—वे प्रारम्भ कर दें, तो मैं समझता हूँ कि वे अपने प्रजाजनों को मिलाने, उनका सहयोग प्राप्त करने, की दिशा में एक लम्बा रास्ता तय कर लेंगे। यह दिखलाने के लिए कि उनके अन्दर भी प्रजातन्त्रीय भावना प्रज्वलित है, और वे शुद्ध स्वेच्छाचारी बने रहना नहीं चाहते वरन् ग्रेट-ब्रिटेन के राजा जार्ज की नाईं अपने प्रजाजनों के वैध-शासक बनना चाहते हैं, इस प्रकार वे अवश्य ही लम्बा क़दम रक्खेंगे।

स्वाधिकार-भोगी सीमा प्रान्त

भारतवर्ष जिसका हक़दार है और जिसे वस्तुतः वह ले सकता है, वह उसे लेना चाहिए। परन्तु उसे जो कुछ भी मिले और जब भी मिले, सीमा-प्रान्त को तो पूर्ण स्वाधिकार (Autonanomy) आज ही मिल जाने दीजिए। उस हालत में सीमा-प्रान्त सारे भारतवर्ष के लिए एक समुपस्थित प्रदर्शन होगा। अतएव सीमा-प्रान्त को कल ही प्रान्तीय स्वराज्य मिल जाय, महासभा का सारा मत इसी पक्ष में मिलेगा। प्रधान मन्त्री महोदय, यदि मन्त्रि-मण्डल से यह प्रस्ताव स्वीकृत करा लेना सम्भव हो कि कल से ही सीमा-प्रान्त पूर्णतया स्वाधिकार भोगी (Autonomus) प्रान्त बन जाय, तो मैं सरहद्दी कौमों के बीच अपने उपयुक्त स्थान ले लूँगा और जब सरहद्द के उस पारवाले लोग भारत पर कोई बुरी नज़र डालेंगे तो उन्हें अपना मददगार बना लूँगा।

धन्यवाद!

सबके अन्त में, मैं कहूँगा कि, अन्त का विषय मेरे लिए बड़ा आनन्ददायी है। आपके साथ बैठकर समझौते की बात-चीत करने का शायद यही आखिरी मौक़ा है। यह बात नहीं कि मैं ऐसा चाहता हूँ। मैं तो आपकी एकान्त-मंत्रणाओं में भी आपके साथ इसी मेज़ पर बैठना और आपके साथ चर्चा तथा अपना पक्ष पेश करना चाहता हूँ और आखिरी कुदकी या डुबकी लगाने से पहले

घुटने तक टेक देने को तैयार हूँ। लेकिन मेरा ऐसा सौभाग्य है या नहीं कि मैं आपके साथ ऐसा सहयोग जारी रक्खूँ, यह बात मेरे ऊपर निर्भर नहीं है। संभव है कि यह आप पर भी निर्भर न हो। यह तो इतनी सारी परिस्थितियों पर निर्भर है कि जिन पर शायद न तो आपका और न हमारा ही किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण होगा। अतः श्रीमान सम्राट् से लेकर जहाँ मैंने अपना निवास-स्थान बनाया उस ईस्ट-एण्ड के दरिद्रतम लोगों तक को धन्यवाद देने की आनन्ददायी रस्म तो मुझे अदा कर ही लेने दीजिए। लन्दन के उस मुहल्ले में, जिसमें ईस्ट-एण्ड के ग़रीब लोग रहते हैं, मैं भी उन्हींमें का एक बन गया हूँ। उन्होंने मुझे अपना ही एक सदस्य और अपने कुटुम्ब का एक अनुग्रहीत सभ्य मान लिया है। यहाँ से मैं अपने साथ जो-कुछ ले जाऊँगा उसमें यह एक सबसे अधिक क़ीमती ख़ज़ाना होगा। यहाँ भी मेरे साथ सभ्य व्यवहार ही हुआ है और जिनके भी सम्पर्क में मैं आया, उनका शुद्ध स्नेह ही मुझे प्राप्त हुआ है। इतने सारे अंग्रेज़ों के सम्पर्क में मैं आया हूँ। यह मेरे लिए एक अमूल्य सुविधा हुई है। उन्होंने वे सब बातें सुनी हैं कि जो अवश्य ही अक्सर उन्हें बुरी लगती होंगी, हालाँ कि वे हैं सब सच। इन बातों को अक्सर मुझे उनसे कहना पड़ा है, मगर उन्होंने कभी भी ज़रा भी अधीरता या झुँझलाहट प्रकट नहीं की। मेरे

लिए यह सम्भव नहीं कि इन बातों को भूल जाऊँ। मुझ पर कैसी भी क्यों न बीते, गोलमेज-परिषद् का भविष्य कैसा भी क्यों न हो, एक बात ज़रूर मैं अपने साथ ले जाऊँगा; वह यह कि बड़े से लेकर छोटे तक हर एक से मुझे पूरी-पूरी कृपा और पूर्ण-प्रेम ही प्राप्त हुआ है। मैं सोचता हूँ कि इस मानुषी-प्रेम को पाने के लिए, मेरा यह इंग्लैण्ड-आगमन अवश्य ही बहुमूल्य हुआ है।

अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों को हिन्दुस्थान के बारे में अक्सर ग़लत खबरें मिलती रही हैं कि जिससे मैं आपके अखबारों को गन्दा देखता हूँ, और लंकाशायर में तो वहाँ वालो को मुझसे चिढ़ने का कुछ कारण भी था, फिर भी और-तो-और पर वहाँ के श्रमिको मे भी मुझे कोई चिढ़ या क्रोध नहीं मिला। इस बात ने मनुष्य-स्वभाव में जो मेरा अखण्ड विश्वास है उसे और भी बढ़ा दिया है, गहरा कर दिया है। श्रमिक स्त्री-पुरुषो ने मुझे गले लगाया, और मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया, मानों मैं भी उन्हीं में का एक न होऊँ। मैं इसे कभी न भूलूँगा।

फिर मैं अपने साथ हज़ारों अंग्रेज़ों की मित्रतायें भी तो ले जा रहा हूँ। मैं उन्हे जानता नहीं, किन्तु बड़े सवेरे जब मैं आपकी गलियो पर घूमने निकलता हूँ तब उनकी आँखों में उस स्नेह के दर्शन करता हूँ। मेरे दुःखी देश पर चाहे कैसी ही क्यों न बीते, यह सब

आतिथ्य, यह सब कृपालुता कभी भी मेरी स्मृति से दूर नहीं हो सकती। अन्त में एक बार फिर मैं, आपकी सहिष्णुता के लिए, आपको धन्यवाद देता हूँ।

[१२]

अलविदा !

प्रधानमंत्री महोदय और मित्रो, सभापति के धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करने का सौभाग्य और उत्तरदायित्व मुझपर आया है, और इस सौभाग्य और उत्तरदायित्व को स्वीकार करते हुए मुझे बड़ा आनन्द होता है। जो सभापति सज्जनता और विवेक के साथ सभा का कार्य संचालन करता है वह तो हमेशा धन्यवाद का पात्र होता ही है, फिर चाहे सभा के सदस्य सभा में हुए निर्णयों अथवा स्वयं सभापतिद्वारा प्रदत्त निर्णयों से सहमत हों अथवा न हों।

प्रधान मन्त्री महोदय, मैं यह जानता हूँ कि आप पर दुहेरा कर्तव्य-भार था। आपको परिषद् का काम-काज तो पर्याप्त शोभा और निष्पक्षता के साथ करना ही था, किन्तु साथ ही अक्सर आपको सरकारी निर्णयों को भी यहाँ पहुँचाना पड़ता था।

और सभापति-पद से आपका अन्तिम कार्य इस परिषद् में चर्चित विषयों पर सरकार का विचारपूर्वक किया हुआ निर्णय जाहिर करना था। आपके कार्य के इस अंग पर मैं इस समय कुछ नहीं कहना चाहता; किन्तु मेरे लिए विशेष आनन्ददायी भाग तो आपने जिस तरह कार्य-संचालन किया वह है, और आपने अनेक बार समय का ध्यान करा कर जो शिक्षा दी है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। सभापति लोग बहुत बार इस अत्यावश्यक कर्तव्य, को भुला देते हैं, और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मेरे देश में तो वे जिस तरह नियमित रूप से इस कर्तव्य को भुला देते हैं, उसे देख कर जी ऊकता जाता है। हमलोगो में समय का पर्याप्त ध्यान है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रधान मन्त्री महोदय, मैं जब वापस हिन्दुस्थान जाऊँगा, तब विलायत के प्रधानमन्त्री ने समय की पाबन्दी संबन्धी जो शिक्षा दी है, बड़ी खुशी के साथ उसे मैं अपने देश-बन्धुओं को समझाने की कोशिश करूँगा।

दूसरी जो चीज आपने हमें बताई है, वह आपका आश्चर्य-जनक परिश्रम है। स्कॉटलैण्ड की कठोर आबोहवा में पले हुए होने के कारण आप यह नहीं जानते कि आराम कैसा होता है, और न हमें भी यह जानने दिया जाता है कि आराम कैसा होता है। करीब-क़रीब बेजोड़ अविश्रान्तता के साथ आपने हमसे—मेरे मित्र और पूज्य भाई वयोवृद्ध पं०

मदनमोहन मालवीयजी एवं मेरे जैसे बूढ़े आदमी से—भी काम लिया है।

आप जैसे स्काच को शोभा देनेवाली निर्दयता के साथ आपने मेरे मित्र और माननीय नेता शास्त्रीजी को काम कर-कर के लगभग थका ही दिया है। आपने कल हमसे कहा भी था कि आप उनके शरीर की हालत जानते थे, फिर भी कर्त्तव्य की प्रेरणा के सामने समस्त वैयक्तिक बातों को आपने एक ओर रख दिया। इसके लिए आप सन्मान के पात्र हैं, और आपके इस आश्चर्य-कारक परिश्रम को मैं सदैव स्मरण रक्खूंगा।

लेकिन इस सम्बन्ध में मैं कहना चाहता हूँ कि यद्यपि मैं शैथिल्य पैदा करनेवाली जल-वायु का जीव समझा जाता हूँ, फिर भी कदाचित् परिश्रम में हम आपके साथ मुकाबला कर सकेंगे। किन्तु इसकी कोई बात नहीं। जैसा कि आपका हाउस आफ़ कामन्स कभी-कभी करता है, कल पूरे चौबीस घण्टे काम करके जो आपने इस बात का नमूना बताया हो कि खास-खास मौके पर आप कैसे अविश्रान्त काम कर सकते हैं तो आप ज़रूर बाज़ी मार ले जायँगे।

जुदे रास्ते पर

अतएव धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते हुए मैं बड़ा खुश हूँ। किन्तु मुझे जो उत्तरदायित्व दिया गया है, उसका पालन करने और उसमें अपना सौभाग्य मानने का एक और भी

कारण है, और वह शायद बड़ा कारण है। कुछ संभव है-कुछ सम्भव है यही मैं कहूँगा, क्योंकि आपकी घोषणा का मैं एक बार, दो बार, तीन बार, जितनी बार आवश्यकता होगी, उतनी बार अध्ययन करूँगा, उसके एक-एक शब्द का अर्थ समझूँगा, उसमें गूढ़ार्थ होगा तो उसे भी खोजूँगा। उसके अन्तर्गत जो-कुछ छिपा होगा उसे समझ लूँगा, और तभी यदि आना हुआ तो मैं इस निर्णय पर आऊँगा, जैसी कि अभी सम्भावना दिखाई पड़ती है, कि मुझे तो अब अपने जुदे रास्ते ही जाना होगा।

हमारे रास्ते जुदी-जुदी दिशाओं मे जाते हैं, तथापि हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं है। आप तो मेरे हार्दिक और आन्तरिक धन्यवाद के पात्र हैं। हमारे इस मनुष्य समाज मे एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव रखने के लिए हमें एक-दूसरे के साथ सहमत होना ही चाहिए, ऐसी बात नहीं है। अपना कोई सिद्धान्त ही न रहे, इस हद तक एक-दूसरे के विचारो के लिए सूक्ष्म आदर या नम्रता नहीं रक्खी जा सकती। इसके विपरीत मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमें है कि हम जीवन की हलचलो से टक्कर लें। कई बार सगे भाइयों तक को अपने-अपने रास्ते जाना पड़ता है, किन्तु यदि कलह के अन्त में—मतभेदों के अन्त में—वे यह कह सके कि उनके मनो में द्वेष न था, और सज्जन और सैनिक की तरह उन्होंने एक-दूसरे के साथ व्यवहार किया, तो

कोई चिन्ता की बात नही। यदि इस प्रकरण के अन्त में मैं अपने एवं अपने देश-बन्धुओ के विषय में यह कह सकूँ, और प्रधानमन्त्री आपके तथा आपके देश-बन्धुओं के विषय में कह सकें, तो मैं कहूँगा कि हम अच्छी तरह विदा हुए हैं। मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा मे होगा, किन्तु मुझे इस बात की कोई चिन्ता नहीं है। अतः मुझे आपसे बिलकुल विपरीत दिशा से जाना पड़े तो भी आप तो मेरे आन्तरिक धन्यवाद के अधिकारी हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट 'अ'

दिल्ली का समझौता—५ मार्च सन् १९३१ ईसवी

[वायसराय और गांधीजी के बीच हुई बातचीत के परिणाम-स्वरूप हुए समझौते, जिसके कारण महासभा ने सविनय आज्ञाभंग के आन्दोलन को स्थगित कर दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेना स्वीकार किया था, उसके कुछ आवश्यक अंश नीचे उद्धरित किये जाते हैं ।]

धारा २—विधान-सम्बन्धी प्रश्नों के विषय में भविष्य में होने-वाली बात-चीत का विस्तार-क्षेत्र, सम्राट सरकार की अनुमति द्वारा, आगे बात-चीत करने के लिए गोलमेज़-सभा द्वारा प्रस्तावित भारत के लिए वैध शासन की योजना ही है । उस प्रस्तावित योजना का, संघ शासन, एक मुख्य अङ्ग है—इसी प्रकार कुछ संरक्षण—जो भारत के हित में होंगे—जैसे रक्षा, परराष्ट्र-सम्बन्धी प्रश्न, अल्प-संख्यक जातियों का स्थान, भारत की साख और आर्थिक ज़िम्मे-दारियाँ ये सब भी उसी योजना के प्रमुख अंग हैं ।

धारा ६—विदेशी माल के बहिष्कार से दो बातें पैदा होती हैं—पहली, बहिष्कार का रूप और दूसरी, बहिष्कार करने के तरीक़े । इस विषय में सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत को तरक्की देने के लिए आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति

हितार्थ चालू की हुई योजना के अंग रूप भारतीय कलाकौशल को प्रोत्साहन देने में सरकार की सहमति है और उसकी यह इच्छा नहीं है कि इस विषय में किये हुए प्रचार, शान्ति से समझाना और विज्ञापन आदि उपायों का, जो किसी की वैयक्तिक स्वतन्त्रता में बाधा न उपस्थित करें और जो क़ानून और शान्ति की रक्षा के प्रतिकूल न हों, विरोध करे। विदेशी माल का बहिष्कार (सिवाय कपड़े के, जिसमें सब विदेशी कपड़े शामिल हैं) सविनय आज्ञा-भंग आन्दोलन के दिनों में, केवल नहीं तो, विशेषकर अंग्रेज़ी माल के, विरुद्ध ही लागू किया गया है और वह भी, जैसा कि स्वीकार भी किया गया है, राजनैतिक ध्येय प्राप्ति के हितार्थ दबाव डालने के लिए।

अतः यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रिटिश भारत, देशी राज्य, सम्राट की सरकार और इंग्लैण्ड के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के बीच होनेवाली स्पष्ट और मित्रतापूर्ण बातचीत में महासभा के प्रतिनिधियों की शिरकत के, जो इस समझौते का प्रयोजन है, उपरोक्त रूप में और उपरोक्त कारणों से किया हुआ बहिष्कार विपरीत होगा।

इसलिए यह तय हुआ कि सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन के स्थगित होने में ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम में न लाना भी शामिल है।

और इसलिए आन्दोलन के समय में जिन-जिन ने ब्रिटिश माल की ख़रीद-फ़रोख़्त बन्द करदी थी यदि वे अपना निश्चय बदलना चाहें तो उनको अबाध्यरूप से ऐसा करने दिया जाय।

धारा ७—विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल व्यवहार कराने और मादक द्रव्यों के व्यवहार को कम कराने के लिए जो उपाय काम में लाये जाते हैं, उनके विषय में यह तय किया जाता है कि ऐसे उपाय, जो क़ानून सम्मत पिकेटिंग के विपरीत हैं, व्यवहार में नहीं लाये जायँगे। ऐसी पिकेटिंग शान्तिमय होना चाहिए और उसमें ज़बर्दस्ती, धमकी; विरुद्ध भड़काहट, प्रजा के कार्य में बाधा और किसी क़ानूनी जुर्म से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। यदि कहीं उपरोक्त उपायों से काम लिया गया तो वहाँ का पिकेटिंग स्थगित कर दिया जायगा।

परिशिष्ट 'आ'

प्रधान मन्त्री की घोषणा

१

[प्रथम गोलमेज-परिषद् के समाप्त होने पर ता० १६ जनवरी सन् १६३१ को प्रधानमंत्री ने जो घोषणा की, वह नीचे दी जाती है ।]

सम्राट की सरकार का विचार है कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं पर हो, केवल संक्रमण काल के लिए सरकार अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए, विशेष परिस्थिति-वश और अल्पसंख्यक जातियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारों को क़ायम रखने के लिए कुछ संरक्षणों का पालन करना आवश्यक समझती है ।

इस संक्रमण काल की विशेष परिस्थिति के हितार्थ जो संरक्षण शासन-विधान में होंगे उनके निर्माण में सम्राट की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे संरक्षण ऐसे हों, और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय कि जिससे नये विधान द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने में कोई बाधा उत्पन्न न हो ।

यह घोषणा करते हुए सम्राट की सरकार को यह बात ज्ञात है कि कुछ बातें, जो प्रस्तावित शासन विधान के लिए अत्यावश्यक हैं, अभी पूर्णतया तय नहीं हुई हैं। परन्तु सरकार को यह विश्वास है कि इस सभा में जो कार्य हुआ है, उससे यह आशा होती है कि इस घोषणा के बाद जो बातचीत होगी, उसमें वे सब आवश्यक शर्तें तय हो जायँगी।

सम्राट की सरकार ने यह बात जानली है कि इस सभा में कार्यवाही, जिसमें सब दलों की सम्मति है, इसी आधार पर हुई है कि भावी केन्द्रीय सरकार अखिल भारतीय संघ शासन पद्धति के अनुसार होगी, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की सहमति द्विखण्ड धारासभा द्वारा होगी। उस शासन-विधान की रचना और स्वरूप तो भविष्य में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों और देशी राजाओं के बीच बात होकर ही निश्चय होंगे। इस शासन का अधिकारक्षेत्र भी बाद में विचार कर ही तय होगा, क्योंकि संघ-शासन के अधीन देशी-राज्यों से सम्बन्ध रखनेवाले वे ही प्रश्न होंगे, जो देशी राजा स्वयं संघ में शामिल होने पर अपनी खुशी से संघ-शासन के अधीन कर देंगे। देशी राजाओं का संघ में शामिल होना केवल इसी शर्त पर होगा, कि राजाओं द्वारा संघ को अर्पित अधिकारों के अतिरिक्त अन्य सब विषयों में उनका सम्बन्ध सम्राट के प्रतिनिधि वायसराय के द्वारा सीधा सम्राट के साथ

रहेगा। कार्यकारिणी (Executive) को धारासभा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, इस नियम के अनुसार भावी सरकार संघ-शासन की धारा सभा के अधीन रहेगी

मौजूदा परिस्थिति में रक्षा और पर-राष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल के अधीन रहेंगे और उसको इस विषय में शासन करने के लिए उपयुक्त अधिकार देने का भी प्रबन्ध किया जायगा। इसके अतिरिक्त चूँकि असाधारण आवश्यकता आ पड़ने पर राज्य की शान्ति का भार वस्तुतः गवर्नर जनरल पर है, और वही अल्प-संख्यक जातियों के क़ानूनी स्वत्वों की रक्षा के लिए ज़िम्मेदार है, इसलिए गवर्नर जनरल को इन विषयों के शासन के लिए भी उपयुक्त अधिकार रहेंगे।

अब रहा आर्थिक अधिकारों का प्रश्न, सो आर्थिक अधिकार देने के पहले इस बात की आवश्यकता है कि भारतमंत्री द्वारा स्वीकृत आर्थिक ज़िम्मेदारियों के समुचित पालन का प्रबन्ध हो और भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे। संघ विधायक समिति की रिपोर्ट की इस सम्बन्ध में जो सिफ़ारिशें हैं, जैसे रिज़र्व बैंक की स्थापना, ऋण प्राप्ति का साधन और विनिमय-नीति, इन सबका, सम्राट की सरकार की सम्मति में, नये शासन विधान में समावेश होना आवश्यक है। भारत की आर्थिक व्यवस्था में संसार का विश्वास अक्षुण्ण रहे, इसके लिए इन सब

बातों का विधान में समावेश परमावश्यक है। इनके अतिरिक्त अन्य सब आर्थिक विषयों, जैसे आय के सीगे और हस्तान्तरित विषयों में व्यय का नियंत्रण, में भावी भारत सरकार को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।

इसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय धारा सभा और कार्यकारिणी (Executive) में द्वैध शासन के चिन्ह भावी विधान में विद्यमान रहेंगे।

परिस्थिति विशेष के कारण रक्षित अधिकारों का जारी रहना अभी तो विधान में आवश्यक प्रतीत होता है और वास्तव में स्वतन्त्र से-स्वतन्त्र विधान में भी किसी-न-किसी प्रकार के रक्षित अधिकार रहते ही हैं। हाँ, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि रक्षित अधिकारों का प्रयोग कम-से-कम किया जाबे का अवसर उपस्थित हो। उदाहरणार्थ मंत्रियों का गवर्नर जनरल से यह आशा करना, कि वह अपने रक्षित अधिकारों का प्रयोग कर, उनकी अपनी ज़िम्मेवारी के भार को हल्का करे, अनुचित होगा, क्योंकि ये रक्षित अधिकार तो विशेष अवस्था में ही उपयोग में आने चाहिएँ, नहीं तो उत्तरदायित्वपूर्ण शासन ही वृथा हो जायगा। यह बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए।

गवर्नर के प्रान्तों में अक्षुण्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की व्यवस्था की जायगी। प्रान्तीय मन्त्री धारा सभा के सदस्यों में से

होंगे और वे सम्मिलित रूप में धारासभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। प्रान्तीय शासन का अधिकार क्षेत्र इतना विशाल होगा कि प्रान्त के शासन में अधिक से अधिक स्वराज्य का उपभोग हो सकेगा। संघ शासन के आधीन वही विषय होंगे, जो अखिल भारतीय हैं और जिनके शासन की ज़िम्मेवारी विधान द्वारा संघ सरकार को दी हुई है।

गवर्नर को केवल वही न्यूनातिन्यून अधिकार होंगे कि जिससे असाधारण समय में शान्ति की रक्षा हो सके और विधान में प्रस्तावित सरकारी नौकरों और अल्प संख्यक जातियों के अधिकार सुरक्षित रह सकें।

अन्त में सम्राट की सरकार की धारणा है कि प्रान्तों में उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन की स्थापना करने के लिए यह आवश्यक है कि धारासभाओं में सभासदों की वृद्धि हो और मतदाताओं की संख्या में भी उपयुक्त वृद्धि की जाय।

विधान रचना में सम्राट की सरकार का विचार है कि ऐसी शर्तें रक्खी जाय, कि जिनसे केवल अल्प-संख्यक जातियों के राज-नैतिक प्रतिनिधित्व की रक्षा का प्रबन्ध ही न हो, बल्कि उनको यह भी विश्वास दिला दिया जाय कि धर्म, जाति तथा वर्ण आदि की विभिन्नता के कारण कोई नागरिकता के अधिकार से वञ्चित न रहेगा।

सम्राट सरकार की सम्मति में विभिन्न जातियों का यह कर्तव्य है कि अल्पसंख्यक उपसमिति में उठाये हुए प्रश्नों पर, जो वहाँ तय नहीं हो सके हैं, आपस में समझौता कर लें। आगे की बातचीत में यह समझौता हो जाना चाहिए। सरकार इस कार्य में भरसक सहायता देगी, क्योंकि उसकी इच्छा है कि नए विधान का संचालन न केवल अविलम्ब ही हो, वल्कि उसके संचालन में प्रारम्भ से ही सब जातियों का सहयोग और विश्वास भी होना चाहिए।

विभिन्न उप-समितियों ने, जो कि भारत के लिए उपयुक्त विधान के आवश्यक अङ्गों पर विचार कर रही हैं, विधान के ढाँचे पर विस्तृतरूप से गवेषणा की है। अतः जो बातें अबतक तय नहीं हुई हैं, वे भी इस सीमा तक पहुँच गई हैं, जहाँ से समझौता दूर नहीं है। सम्राट की सरकार इस सभा की रचना और अल्प समय, जो इसको कार्य के लिए लंदन में मिला है, दोनों पर विचार करते हुए यही उचित समझती है कि अभी इसकी कार्यवाही स्थगित करदी जाय और इसको सफलता में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं, उनके दूर करने की विधि पर भी विचार किया जाय। सम्राट की सरकार शीघ्र ही एक योजना करनेवाली है, जिससे हम सबका सहयोग जारी रहे और अपने श्रम के फलस्वरूप नया विधान शीघ्र ही तैयार हो जाय। यदि इस अवसर में सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन भाग लेनेवालों ने वायसराय की अपील के उत्तर में इस घोषणा

के अनुसार कार्य में सहयोग देना स्वीकार किया, तो उनके सहयोग प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया जायगा।

अब मेरा कर्तव्य है कि आपने यहाँ आकर, प्रत्यक्ष बातचीत करके जो प्रशंसनीय सेवा भारतवर्ष की ही नहीं बल्कि इस देश की भी की है, उसके लिए मैं सरकार की ओर से आप सबको धाई दूँ। इधर कई वर्षों से दोनों ओर के अनेक पुरुषों ने बीच में पड़कर हमारे और आपके पारस्परिक सम्बन्ध में जो ग़लतफ़हमी और विभिन्नता पैदा करादी है, उसको दूर करने का सबसे अच्छा उपाय इस प्रकार प्रत्यक्ष की बातचीत ही है। इस प्रकार मिलकर एक-दूसरे के विचार और बाधाओं से जानकर होना ही पारस्परिक विरोध दूर करने और एक-दूसरे की माँग पूरी करने का सर्वोत्तम उपाय है। सम्राट की सरकार एकता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करेगी। जिससे नया विधान पार्लमेंट से पास होकर दोनों देश के वासियों की सद्‌कामना के साथ संचालन में आवे।

२

[दूसरी गोलमेज़-परिषद् की समाप्ति पर ता० १ दिसम्बर सन् १९३१ को प्रधान मन्त्री ने जो वक्तव्य दिया वह नीचे दिया जाता है ।]

१—हम गोलमेज़-परिषद् के दो अधिवेशन कर चुके हैं, और अब समय आगया है कि भारत के भावी विधान की रचना में जो-जो कठिनाइयाँ उपस्थित हैं, उन पर विचार करने और उनको दूर करने का प्रयत्न करने के प्रश्नों पर हमने जो-कुछ कार्य किया है, उस का लेखा लें । जो विभिन्न रिपोर्टें हमारे सामने पेश हुई हैं, वे हमारे सहयोग के कार्य को दूसरी मञ्जिल पर पहुँचा देती हैं, और अब हमको ज़रा विश्राम लेकर अबतक के कार्य का सिंहावलोकन करना चाहिए । यहाँ यह भी देखना चाहिए कि हमने अबतक किन-किन विरोधों का सामना कर लिया है, और अपने कार्य को सफलतापूर्वक शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने के लिए क्या उद्योग किया जाय । अपनी पारस्परिक बात चीत और व्यक्तिगत सम्बन्धों को मैं बड़ा मूल्यवान समझता हूँ, और आज मुझे यह कहने का साहस है कि इन्हीं दो बातों ने विधान के प्रश्न को केवल शुष्क विधान रचना तक ही सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि हमारे हृदयों में एक-दूसरे के लिए आदर और विश्वास के भाव पैदा कर दिये, जिससे हमारा कार्य एक आशा-

पूर्ण राजनैतिक सहयोग के समान होगया। मुझे दृढ़ विश्वास है कि यही भाव अन्त तक रहेंगे, क्योंकि केवल सहयोग से ही हमको सफलता प्राप्त हो सकती है।

२—इस वर्ष के प्रारम्भ में मैंने तत्कालीन सरकार की नीति की घोषणा की थी और मुझे मौजूदा सरकार की ओर से यही आदेश है कि मैं आपको और भारतवर्ष को निश्चयपूर्वक आश्वासन दिलाऊँ कि इस सरकार की भी वही नीति है। मैं उस घोषणा के मुख्य-मुख्य भागों को पुनः घोषित करता हूँ:—

"सम्राट की सरकार का विचार कि भारत के शासन का भार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं पर हो, केवल संक्रमण काल के लिए सरकार अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए, परिस्थिति वश और अल्पसंख्यक जातियों की राजनैतिक स्वतन्त्रता और अधिकारों को क़ायम रखने के लिए कुछ संरक्षणों का पालन करना आवश्यक समझती है।

"इस संक्रमण काल की विशेष परिस्थितिके हितार्थ जो संरक्षण शासन-विधान में होंगे, उनके निर्माण में सम्राट की सरकार का मुख्य ध्यान इस बात पर रहेगा कि वे संरक्षण ऐसे हों और उनका पालन भी इस प्रकार किया जाय, कि जिससे नये विधान द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित होने में कोई बाधा उत्पन्न न हो।"

३—केन्द्रीय सरकार के विषय में तो मैं कह चुका था कि सम्राट की गत सरकार ने कुछ प्रकट शर्तों के साथ यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था कि यदि भावी विधान अखिल भारतीय संघशासन पद्धति के अनुसार हो तो कार्यकारिणी (Executive) धारासभा के प्रति उत्तरदायी होगी। शर्तें यही थीं कि फ़िलहाल रक्षा और पर राष्ट्रों से सम्बन्ध के विषय गवर्नर जनरल द्वारा रक्षित रहें और आर्थिक अधिकारों के विषय में इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि भारत मन्त्री द्वारा कृत आर्थिक जिम्मेदारियों का समुचित रूप से पालन हो, जिससे भारत की आर्थिक अवस्था और साख अक्षुण्ण बनी रहे।

४—अन्त में हमारी यह सम्मति थी कि गवर्नर जनरल को ऐसे अधिकार दिये जायँ, जिससे वह अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक अधिकार-रक्षण और असाधारण समय में देश में शान्ति-स्थापन की अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर सके।

५—मोटे तौर पर यही सब चिन्ह भावी भारत के शासन विधान के थे, जो सम्राट की सरकार ने गत गोलमेज़ की समाप्ति पर विचार कर प्रकाशित किये थे।

६—जैसा कि मैंने अभी प्रकट किया है, सम्राट की मौजूदा सरकार के मेरे सहयोगी, गत जनवरी वाले मेरे वक्तव्य को, अपनी नीति के अनुकूल स्वीकार करते हैं। विशेषकर वे इस बात को

पुनर्घोषित कर देना चाहते हैं कि 'अखिल भारतीय संघ' ही उनकी सम्मति में भारत की विधान सम्बन्धी कठिनाइयों की कुँजी है। वे सब इसी नीति का अविचलित रूप से अवलम्बन कर यथाशक्ति विघ्न बाधाओं को दूर करते हुए चलना चाहते हैं। इस घोषणा पर अधिकार की मोहर लगाने के लिए मैं आज के वक्तव्य को 'व्हाइट-पेपर' के तौर पर पार्लमेंट के दोनों भवनों में बँटवा दूँगा, और सरकार इसी सप्ताह पार्लमेंट से उसे मंजूर करवा लेगी।

७—गत दो मास से जो बात-चीत चल रही है, उसने हमारे प्रश्नों को स्पष्ट कर दिया है, जिससे उनमें से कुछ को हल करना भी सहज हो गया है। परन्तु इससे यह भी सिद्ध हो गया है कि बाक़ी के प्रश्नों पर फिर सहयोगपूर्ण विचार करना आवश्यक है। अभी कई बातों में विचार विभिन्नता है—जैसे संघ धारा सभी की रचना और अधिकारों के विषय। मुझे दुःख है कि अल्प संख्यक जातियों के संरक्षण के मुख्य प्रश्न का कुछ फ़ैसला न होने से यह परिषद् संघ-सरकार और धारा-सभा के रूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में ठीक तय नहीं कर सकी। इसी प्रकार अबतक देशी राज्य भी संघ में अपना-अपना स्थान और उसमें अपने पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में कुछ तय नहीं कर सके हैं। इन बातों की उपेक्षा करने से हमारे ध्येय की प्राप्ति नहीं होगी, और न यह संभव है कि ये सब कठिनाइयाँ अपने-आप दूर हो जायँगी। अतः पूर्व

इसके कि हम इन सब बातों का विधान के ढाँचे में सफलता से समावेश कर सकें, आवश्यकता इस बात की है कि हम इन पर पुनः विचार और बात-चीत करें, जिससे भिन्न-भिन्न मतों और स्वार्थों का समन्वय हो सके। इससे मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि यह कार्य असंभव है या इसके लिए हमें अधिक ठहरना पड़ेगा। मैं तो आपको यह याद दिलाना चाहता हूँ कि हमने ऐसा काम हाथ में लिया है जिसमें सम्राट की सरकार और भारत के नेताओं को ध्यान, साहस और समय लगाना पड़ेगा, ताकि ऐसा न हो कि कार्य समाप्त होने पर कुछ अव्यवस्था और निराशा हो, और राजनैतिक उन्नति का द्वार खुलने के बजाय बंद हो जाय। हमें अच्छे कारीगर की तरह ठीक और सही तौर पर कार्य करना पड़ेगा, और भारत हमसे इसी कर्त्तव्य की आशा भी करता है।

८—तो हमारी स्थिति अभी क्या है; हमने ध्येय की प्राप्ति के लिए कौन सा मार्ग निश्चित किया है? मैं ऐसी साधारण घोषणाएँ नहीं चाहता, जो हमको आगे बढ़ाने में सहायक न हों। जो घोषणाएँ पहले की जा चुकी हैं, और जिनको आज मैंने पुनः दुहराया है, सरकार की सद्भावना के परिचय और उन समितियों को, जिनका ज़िक्र मैं आगे करूँगा, कार्य-संलग्न करने के लिए पर्याप्त हैं। मैं तो व्यावहारिक होना चाहता हूँ। अखिल-भारतीय-संघ-स्थापन का वृहद् विचार अभी लोगों के दिलों में जमा हुआ है। संक्रमण काल

के लिए कुछ उपयुक्त संरक्षणों सहित उत्तरदायित्वपूर्ण संघ-सरकार का सिद्धान्त अभी तक अविकल बना हुआ है। हम सब इसमें सहमत हैं कि भावी गवर्नर के प्रान्तों के शासन में बाहर से कम-से-कम हस्ताक्षेप और भीतरी प्रबन्ध में अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता हो।

९—इस अन्तिम बात के विषय में मैं यह कह दूँ कि भावी सुधार के फल स्वरूप सीमा-प्रान्त को गवर्नर का प्रान्त बनाने का हमारा विचार है। इसके अधिकार, केवल सीमा प्रान्त की विशेष परिस्थिति के कारण कुछ परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य प्रांतों के समान ही होंगे, और उनके समान ही शांति-स्थापन और रक्षा के निमित्त, गवर्नर को दिये हुए अधिकार वास्तविक और कारगर होंगे।

१०—सम्राट की सरकार गत गोलमेज़ परिषद् में पास हुई सिन्ध को अलग प्रान्त बनाने की सिफारिश सिद्धान्त रूप में स्वीकार करती है बशर्ते कि इस प्रान्त को अपने आर्थिक भार उठाने के साधन प्राप्त होजायँ। अतः हमारा विचार भारत सरकार को यह कहने का कि वह सिन्ध के प्रतिनिधियों के साथ यह विचार करने के लिए एक कान्फ्रेंस की आयोजना करे कि अर्थ-विशेषज्ञों द्वारा इस विषय में बतलाई हुई कठिनाइयों को दूर करने का यत्न कैसे किया जाय।

११—मैं विषयान्तर में चला गया,—हमारा विषय स्वतन्त्र

प्रान्त और देशी राज्यों का सम्मिलित संघ था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, हमारी बात-चीत ने स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि संघ की स्थापना एकाध महीने में नहीं हो सकती है। अभी तो बहुत-कुछ रचनात्मक कार्य बाक़ी है, कई बातों पर समझौता कर, उनके आधार पर भवन निर्माण करना है। यह तो स्पष्ट है कि प्रान्तों में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन स्थापित करना उतना कठिन नहीं है और यह सुगमतर रीति से भी हो सकता है। अभी केन्द्रीय सरकार के पास जो अधिकार हैं, उनमें घटा-बढ़ी करने में—क्योंकि प्रान्तीय स्वराज्य के लिए प्रान्तों को विशेष स्वतन्त्रता के अधिकार देने पड़ेंगे—कोई ख़ास बाधाएँ उपस्थित नहीं होंगी। इसी कारण सरकार को दबा कर कहा गया है कि संघस्थापन करने का सुगम-तर उपाय यही है कि प्रान्तों को शीघ्र स्वराज्य दे दिया जाय और इसमें यथासंभव आवश्यकता के सिवा एक दिन की भी देर न हो। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि यह इकतरफ़ा सुधार आप को कम रुचिकर प्रतीत होता है। आप लोगों की इच्छा है कि विधान में ऐसा कोई परिवर्तन न किया जाय, जिसका असर समष्टि रूप से सारे भारत पर न पड़े और सम्राट की सरकार की भी यह मंशा नहीं है कि कोई भी उत्तरदायित्व, जो किसी भी कारण से असामायिक समझा जाता हो, बलात् दिया जाय। संभव है कि समय और परिस्थिति में परिवर्तन हो जाय, अतः अभी शीघ्र ही

ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे आगे पछताना पड़े। हमारी सदा से यह सम्मति रही है, और अब भी है,कि संघ-शासन स्थापित करने के प्रयत्न में शीघ्रता की जाय। परन्तु इस कारण से सीमाप्रान्त के सुधारों में विलम्ब करना भूल होगी, अतः हमारा विचार है कि भावी सुधारों के लिए न ठहर कर, मौजूदा विधान के अनुसार ही अभी सीमाप्रान्त को जल्दी-से जल्दी गवर्नर का प्रान्त बना दिया जाय।

१२. हमको यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय प्रगति के मार्ग में जातिगत प्रश्नरूपी बहुत बड़ी रुकावट पड़ी हुई है। मैंने अपनी इस धारणा को आपसे कभी नहीं छिपाया है कि इसका फ़ैसला तो सबसे पहले अपको आपस में ही कर लेना चाहिए। स्वयंशासित जनता का प्रथम कर्तव्य और भार तो यही है कि आपस में पहले यह फ़ैसला करले कि प्रजातन्त्र पद्धति के प्रतिनिधित्व का प्रयोग कैसे किया जाय अर्थात् प्रतिनिधित्व किसको और कितना दिया जाय। दो बार इस परिषद् ने इस काम को हाथ में उठाया और दोनों ही बार असफलता मिली। मैं नहीं मानता कि आप हमको यह कहेंगे कि आपकी यह असमर्थता सदा बनी रहेगी।

१३. समय तीव्र वेग से दौड़ रहा है। और यदि आपने ऐसा समझौता, जो सब दलों को स्वीकार हो, और जिस पर आगे कार्य

किया जा सके, पेश नहीं किया, तो हमें शीघ्र ही अपने आगे बढ़ने के प्रयत्न में रुकना पड़ेगा (और वास्तव में अभी हम रुक ही से गये हैं)। ऐसी दशा में सम्राट की सरकार को विवश होकर एक अस्थायी योजना बनानी होगी, क्योंकि सरकार निश्चय कर चुकी है कि आपकी इस असमर्थता पर भी राजनैतिक उन्नति रुक नहीं सकती। इसका अर्थ यह होगा कि सम्राट की सरकार आपके लिए केवल प्रतिनिधित्व का प्रश्न ही तय नहीं करेगी, बल्कि यथाशक्य बुद्धिमानी और निष्पक्षतापूर्वक यह भी तय करेगी, कि विधान में क्या-क्या नियन्त्रण और सन्तुलन रखने की आवश्यकता है, जिससे अल्प-संख्यक जातियों की, बहु-संख्यक जातियों के, जिनका प्राधान्य प्रजातन्त्र शासन में होगा, अत्याचारों से रक्षा हो सके। मैं आपको आगाह करदूँ कि विधान का यह भाग, जो आप स्वयं निर्धारित नहीं कर सकते हैं, यदि सरकार आरज़ी तौर पर भी निर्धारित करेगी, तो चाहे वह कितने ही गम्भीर विचार के साथ अल्प संख्यक जातियों की रक्षार्थ संरक्षणों का समावेश करे, जिससे किसीको यह शिकायत न हो कि उनकी उपेक्षा हुई है, तब भी वह इस प्रश्न का संतोष-जनक निपटारा नहीं होगा। मैं आपसे यह भी कहूँगा कि यदि आप इस विषय में आपस में किसी निश्चय पर नहीं पहुँचेंगे, तो आप निश्चय रखिए कि भारत के विधान पर, हमारे समान विचार रखने वाली, किसी भी सरकार के कार्य को आप अधिक दुस्तर बना-

वेंगे, और वह विधान अन्य राष्ट्रों के विधानों के समान आदर-पूर्ण स्थान नहीं पा सकेगा। अतः मैं आपसे एक बार फिर अनुरोध करूँगा कि आप जाकर पुनः इस प्रश्न पर विचार-विनिमय करें और किसी समझौते के साथ हमारे सामने पेश करें।

१४. हमारा इरादा आगे बढ़ने का है। अब हमने अपने कार्य को सिलसिलेवार कुछ विषयों में विभक्त कर लिया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पहले उनपर छोटी समितियाँ, बहुत बड़ी बड़ी परिषदें नहीं, गवेषणापूर्वक विचार करें और हमें उचित है कि अब इसी क्रमानुसार कार्य करने के लिए उपाय सोचें। जबतक यह कार्य हो और वे समितियां इसकी रिपोर्ट पेश करें, तब तक हमारी आपकी बातचीत जारी रहनी चाहिए। अतः आपकी सम्मति लेकर मैं चाहता हूँ कि एक प्रतिनिधि समिति— इस सभा की कार्यकारिणी समिति, नामज़द कर दी जाय, जो भारत में ही रहे और जिसका वायसराय के द्वारा हमसे भी सम्बन्ध बना रहे। अभी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वह समिति किस प्रकार कार्य करेगी। यह विषय तो ऐसा है, जिसपर विचार करना होगा और विचार भी तब संभव होगा, जब हमारी प्रस्तावित समितियाँ अपनी विविध रिपोर्टें पेश कर दें। हाँ, अन्त में हमको एक बार और मिलना होगा, जिससे सब रचनात्मक कार्यों का एक बार सिंहावलोकन हो सके।

१५ हमारा यह विचार है कि परिषद् द्वारा प्रस्तावित ये समितियाँ शीघ्र बनादी जायँ—(क) जो चुनाव क्षेत्रों और मताधिकार के विषय में जाँच और सिफारिश करें; (ख) जो फीडरल फाइनेन्स सब-कमिटी की सिफ़ारिशों की आय-व्यय के आँकड़ों से मिलान कर जाँच करे; और (ग) जो कुछ देशी राज्य विशेषों के विषयों में उत्पन्न हुए आर्थिक प्रश्नों पर गौर से विचार करे। हमारा यह विचार है कि ये समितियाँ इस देश के प्रमुख सार्वजनिक पुरुषों के अधिनायकत्व में, आगामी नए वर्ष के प्रारम्भ में ही भारत में कार्य करें। संघ-विधान विषयक अन्य अनिश्चित विषयों पर जो सम्मतियाँ आपने प्रकट की हैं, उन पर हम शीघ्र ही विचार करेंगे, और ऐसा उपाय करेंगे जिससे उनके विषय मे भी उचित समझौता हो सके।

१६. सम्राट की सरकार ने संघ-विधायक समिति की रिपोर्ट के २६ वें पेरा मे प्रस्तावित राय पर भी, जिसमे संघ धारा सभा मे राज्यों द्वारा स्वीकृत प्रतिनिधियों की संख्या को प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधित्व के विचार से विभाजित करने मे आसानी होगी, गौर कर लिया है। मेरे पूर्व-कथन से यह स्पष्ट है कि देशी राजा-स्वयं इस बात के इच्छुक हैं, कि उनके प्रतिनिधित्व का फैसला यथा संभव शीघ्र ही हो, और सम्राट की सरकार की इच्छा है कि उनको इस विषय में सम्मति के रूप में हर प्रकार की सहायता

दी जाय। यदि राजाओं के आपस में इस विषय में उचित निप-टारा होने में विलम्ब मालूम हुआ तो सरकार वह उपाय करेगी जिससे उचित निपटारा शीघ्र हो।

१७. दूसरे जिस विषय के बारे में कुछ कहने की आप आशा करेंगे और जो आप बड़ा आवश्यक समझते हैं, उस की कुछ चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूँ। जातिगत प्रश्न का ऐसा निपटारा जो केवल धारासभा में जातियों के प्रतिनिधित्व का ही फ़ैसला करे, मेरी राय में 'नैसर्गिक अधिकार' प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। विधान में केवल ऐसी बात के समावेश से अल्प-संख्यक जातियाँ तो उसी अल्प-संख्या में ही रहेंगी; अत. विधान में ऐसी शर्तें अवश्य होनी चाहिएँ, जिनसे सब धर्मों और जातियों को यह विश्वास हो कि राष्ट्र में बहुसंख्यक सरकार उनकी नैतिक और आर्थिक उन्नति में बाधा नहीं पहुँचायगी। सरकार अभी यहाँ यह नहीं कह सकती कि वे शर्तें क्या हैं। उनका रूप और विस्तार तो बड़े सोच-विचार के बाद ही निश्चित किया जा सकता है, जिससे एक ओर तो वे अपने तात्पर्य्य को सिद्ध कर सकें और दूसरी ओर प्रतिनिधित्व-सिद्धान्तवादी उत्तरदायित्वपूर्ण-शासन में भी किसी प्रकार से क्षति न पहुँचे। इस बात के तय करने में सलाहकार समिति अच्छी सहायता देगी, क्योंकि इस विषय के भी जातिगत मताधिकार विभाजन के समान सबकी रायके

साथ तय होने में ही, विधान का सफलतापूर्वक संचालन हो सकता है।

१८ अब एक बार फिर हम और आप एक-दूसरे से विदा होते हैं। हममें से अधिक-से-अधिक आशावादी को जितनी सफलता की आशा थी उससे अधिक सफलता हमको प्राप्त हुई है। भाषणों में प्रतिनिधिगण के मुख से ऐसे भाव सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, क्योंकि तथ्य भी यही है। हमारे कार्य में बाधाएँ उपस्थित हुई हैं, परन्तु उस आशावादी ने, जिसका संसार उन्नति के लिए आभारी है, यह कहा था कि बाधाएँ तो दूर करने के लिए ही होती हैं। इस उपदेश से जो नूतनता और सद्भावना की शिक्षा मिलती है, उसीके अनुसार हमें अपने कार्य में संलग्न रहना चाहिए। ऐसी परिषदों का मेरा विस्तृत अनुभव यही है कि समझौते का रास्ता शुरू में टूटा-फूटा और बाधा पूर्ण होता है, अतः प्रारम्भ में प्रत्येक को एक प्रकार की निराशा-सी ही होती है। परन्तु एक समय आता है जब, और अधिकतर अकस्मात ही, रास्ता साफ़ हो जाता है और मंजिले-मक़सूद तक आराम से पहुँच जाते हैं। मेरी यह प्रार्थना ही नहीं है कि हमारा अनुभव भी यही हो, प्रत्युत मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सरकार सतत यही प्रयत्न करेगी कि हमारा और आपका श्रम शीघ्र ही फलदायक हो।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर के

प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन	।=)
२—जीवन-साहित्य (दोनों भाग)	१=)
३—तामिलवेद	॥।)
४—शैतान की लकड़ी	॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ	॥≡)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दोनों भाग)	१॥।-)
७—अनोखा !	।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान	॥।-)
९—यूरोप का इतिहास (तीनों भाग)	२)
१०—समाज-विज्ञान	१॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र	॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व	॥।=)
१३—चीन की आवाज़	।-)
१४—दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह (दोनों भाग)	१।)
१५—विजयी बारडोली	२)
१६—अनीति की राह पर	।≡)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा	।-)
१८—कन्या-शिक्षा	।)
१९—कर्मयोग	।=)
२०—कलवार की करतूत	=)
२१—व्यावहारिक सभ्यता	।)॥
२२—अँधेरे में उजाला	।≡)
२३—स्वामीजी का बलिदान	।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी	।)
२५—स्त्री और पुरुष	॥)
२६—घरों की सफाई	।)
२७—क्या करें ? (दोनों भाग)	१॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई	॥=)
२९—आत्मोपदेश	।)

३०—यथार्थ आदर्श जीवन
(अप्राप्य) ॥-)

३१—जब अंग्रेज नहीं
आये थे— ।)

३२—गंगा गोविन्दसिंह
(अप्राप्य) ॥=)

३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)

३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)

३६—स्वाधीनता के सिद्धांत ॥)

३७—महान् मातृत्व की
ओर— ।॥=)

३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
(अप्राप्य)

३९—तरंगित हृदय ॥)

४०—नरमेध ! १॥)

४१—दुखी दुनिया ॥)

४२—ज़िन्दा लाश ॥)

४३—आत्म-कथा
(दोनोंखण्ड) २)

४४—जब अंग्रेज़ आये
(ज़ब्त) १।=)

४५—जीवन-विकास
अजिल्द १।) सजिल्द १॥)

४६—किसानों का बिगुल =)
(ज़ब्त)

४७—फाँसी ! ॥)

४८—अनासक्तियोग तथा
गीता बोध ।)

४९—स्वर्ण-विहान (ज़ब्त)
(नाटिका) ।=)

५०—मराठों का उत्थान
और पतन २॥)

५१—भाई के पत्र—
अजिल्द १॥) सजिल्द २)

५२—स्व-गत— ।=)

५३—युग-धर्म—ज़ब्त १=)

५४—स्त्री-समस्या
अजिल्द १।॥) सजिल्द २)

५५—विदेशी कपड़े का
मुक़ाबला ॥=)

५६—चित्रपट ।=)

५७—राष्ट्रवाणी ॥=)

५८—इंग्लैण्डमें महात्माजी १)

५९—रोटी का सवाल १)